सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : १ अंक : ८ १ अगस्त २०१५ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० ₹ वार्षिक

स्वामी दयानन्द सरस्वती

दिन को जिसे चैन न था न रात को आराम था।
दिन में एक दर्द लिए फिरता शुबह शाम था।
'पथिक' अपनी जान दे के जान हम में डाल गया,
उसका स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम था।

यज्ञ की महिमा

तर्ज- दिल तोड़ने वाले जादूगर अब मैंने तुझे.....

यह यज्ञ पुराने भारत का गोरव दर्शाने वाला है।
और पावन वैदिक संस्कृति की महिमा बतलाने वाला है।।

1. जड़ चेतन देवों की पूजा यह यज्ञ हमें सिखलाता है।
हम आपस में मिलजुल के रहें संगठन का पाठ सिखाता है।
श्रद्धा से भर कर दान करो सन्देश सुनाने वाला है।

2. करनी है बुजुर्गों की पूजा इनका न कभी अपमान करो।
संगमेल बराबर वालों से छोटों के लिए तुम दान करो।
परिवार हमारे स्वर्ग बने सौभाग्य जगाने वाला है।

3. बल वर्धक, मिष्ट, सुगन्ध प्रद और रोग निवारक औषधियाँ।
शुद्ध गोघृत सुन्दर समिधा ले अग्नि में डाली आहुतियाँ।
वैज्ञानिक अनुसन्धान करें यह रहस्य सुझाने वाला है।

4. जल वायु पवित्र बनें इससे पर्यावरण सुबासित होता है।
इस प्रक्रिया से जड़ प्रकृति का हर तत्व प्रभावित होता है।
बढ़ते हुए विकट प्रदूषण को यह यज्ञ मिटाने वाला है।

5. मल मूत्र पसीने के द्वारा जब हम दुर्गन्ध फैलाते है।
दुर्गन्ध से रोग उपजते हैं हम सब पापी बन जाते है।
यज्ञ यह दुर्गन्ध को दूर करे पापों से बचाने वाला है।

6. राजा व प्रजा मिल करके 'पथिक' रूचि पूर्वक यज्ञ रचाते थे।
अतिवृष्टि न थी न अनावृष्टि न अकाल के कष्ट सताते थे।
यह वातावरण सब प्राणियों के अनुकूल बनाने वाला है।

-पं. सत्यपाल "पथिक"

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों का प्रचार-प्रसार व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : 1 अंक : ७

आषाढ़ संवत् २०७२

जुलाई २०१५

सृष्टि संवत् १९६०८५३११६

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएडा

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

विशेष : महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं । उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है ।

कार्यवाहक सम्पादक :

दुर्गादास 'वैदिक'

99293-92335

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

वार्षिक शुल्क :150 रुपये

आजीवन शुल्क : 1100 रुपये

(15 वर्ष)

SBBJ बैंक की खाता संख्या 51013406510

पायें, पढ़ें, पचायें

	क्या	कहाँ
1	ईश्वर स्तुति-प्रार्थना	4
2	सम्पादकीय	5
3	वेद परिचय	6
4	ब्रह्मचर्य का पोषक	8
5	सत्य असत्य आठ प्रमाण	10
6	खण्डन मण्डन........	11
7	आर्यसमाज की देन..	16
8	आहार-विहार....	19
9	श्रावणी पर्व.......	22
10	एक आदर्श विद्यार्थी.....	25
11	धर्म का मूल स्रोत.	27
12	आजादी राष्ट्रीय पर्व	32
13	132वां महर्षि स्मृति महोत्सव सम्मेलन सूचना	34

स्तुति-प्रार्थना

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं, धियं जिन्वमयवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये [१०] १।६।१५।५।।

व्याख्यान-हे सर्वाधिस्वामिन् ! आपही चर और अचर जगत् के "ईशानम्" रचने वाले हो। "धियंजिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करने वाले सब को तृप्त करने वाले, प्रीणनीयस्वरूप, "पूषा" सब के पोषक हो, उन आपका हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हमहे" आह्वान करते हैं । "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "अदब्धःरक्षिताः" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिए "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो, आप से पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ।।१०।।

अतोदेवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रेम ।

पृथिव्याः सप्त धामभि : [११] १।२।७।१।।

व्याख्यान- हे "देवाः" विद्वानो ! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिए पृथिवी से ले के ["सप्त"] सप्त विध "धामभि" धाम अर्थात् ऊंचे नीचे सात प्रकार के लोकों को बनाया तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया । उन लोकों के साथ वर्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उसी सामर्थ्य से हम लोगो की रक्षा करें । हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो । कैसा है वह विष्णु ? जिस ने इस सब जगत को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है, उस की नित्य भक्ति करो ।।११।।

- महर्षिदयानन्दकृतः आर्याभविनय से

सम्पादकीय

ऋषि स्मृति प्रकाश पत्रिका में महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में उनके उद्‌गारों को उनके ही शब्दों में उल्लेख करते है-

"मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है।"

"इसलिए विद्वान् आर्यों का यही मुख्य काम है कि उपदेश का लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित करदे, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहे।

"मनुष्य की आत्मा सत्यासत्य का जानने वाली है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।"

"सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।"

"यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में है। वे पक्षपात छोड़कर सर्वतन्त्र सिद्धानत और जो-जो बातें सबके अनुकूल, सब में सत्य है, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बाते है उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्ते वर्त्तावें तो जगत का पूर्ण हित होवे।"

"क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।"

"इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दु:ख सागर में डूबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में घर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विग्न करते है। परन्तु "सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन जन्था विततो देवयान:" अर्थात् सर्वदा सत्य की विजय और असत्य की पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है, इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हठते। यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्' यह गीता का वचन है कि जोर विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म है, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं।"

आओ हम सब ऋषि के उपरोक्त सत्योपदेश का धारण, वरण व नमन करते हुए, सत्य सनातन वैदिक धर्म की जय हेतु ऋषि तुल्य कार्य करें।

तेरा वैभव अमर रहे मां,
हम दिन चार रहे ना रहे।।

— दुर्गादास वैदिक

यजुर्वेद परिचय

ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश के द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस जिस प्रकार यथा योग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो अंग व साधन है सो सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ ज्ञान न हो तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने का यह हेतु है कि जो क्रिया प्रकाश अविधा की निवृत्ति, अधर्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना हैं, जो कर्म्मकांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञान कांड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है। कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षण भर भी रह सके, क्योंकि जीव अल्पज्ञ एक देशवर्त्ती चेतन है । इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की क्योंकि (ऋक.) और (यजु.) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिससे मनुष्य लोग ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का, संग सब शिल्प क्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथा योग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थो का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है ।

इस यजुर्वेद में सब चालीस अध्याय हैं और चालीसों अध्याय के सब मिलके १९७५ मन्त्र हैं। एक एक अध्याय म़ें कितने कितने मन्त्र हैं वह इस प्रकार है ।

अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	६७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	६६	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
६	४०	१६	६५	२६	६०	३६	१३
१०	३४	२०	६०	३०	२२	४०	१७

सर्वथा सत्य है, परन्तु इसमें भी कोई संशय नहीं है कि केवल यह कहते रहने से कि इस देश के निवासी मनुष्य उत्पन्न नहीं करते, न कर सकते हैं और न कर सकेंगे, भेड़-बकरियों के बदले मनुष्य जन्म-ग्रहण नहीं करने लगेंगे।

भारत की महिमा का मूल क्या था ? ब्रह्मचर्य ! हिन्दुओं की जिस गरीयसी प्रतिभा को देखकर प्राचीन यूनान और रोम आश्चर्यान्वित हो गये थे, उसका हेतु क्या था ? ब्रह्मचर्य ! जो उपनिषदादि अनुपम और उपादेय ग्रन्थमाला के रचयिता थे, वे कौन थे ? ब्रह्मचारी ! रामायण और महाभारत के जिस अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मनुष्य-मण्डली अवाक् रह जाती है, उसके सृष्टिकर्त्ता कौन थे ? ब्रह्मचारी ! अर्थनीति, युद्धनीति, व्यवहारनीति और धर्मनीति के प्रवर्त्तक कौन थे? ब्रह्मचारी! गम्भीर विचारशीलता और तत्त्वानुसन्धान के अद्भुत क्षेत्रस्वरूप सांख्यमीमांसा की रचना किन्होंने की ? ब्रह्मचारियों ने ! पाणिनि का पुनरुद्धार साधनपूर्वक भाषानुवाद, साहित्य विज्ञान के पथ का प्रचारक कौन था ? एक ब्रह्मचारी ! वैदिक विद्या के पुनरुद्दीपन में आत्मोसर्ग करके नये युग का प्रवर्त्तक कौन था ? एक ब्रह्मचारी ! सुतराम् देखा जाता है कि भारतभूमि का जो कुछ सम्बल, जो कुछ गौरव, जो कुछ प्रतिष्ठा थी उस सबके मूल में ब्रह्मचर्य ही विद्यमान था, अत: जब तक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान होता रहेगा, तब तक भारत के विलय होने की सम्भावना नहीं हो सकती, जब तक ब्रह्मचारी का अभ्युदय होता रहेगा, जब तक आर्यजाति के लिए निराश होने का कोई कारणा नहीं है। यह निश्चय है कि यदि आर्यावर्त फिर जागेगा तो ब्रह्मचर्य के प्रभाव से जागेगा, यदि इन पददलित-परानुग्रहजीवी हिन्दुओं का पुनरुत्थान होगा तो ब्रह्मचारियों के द्वारा ही होगा। यदि आर्यों का प्रनष्ट गौरव फिर कभी वापस आकर चमकेगा तो ब्रह्मचर्य की महिमा से चमकेगा, क्योंकि बल, वीर्य, मेधा, धारणाशक्ति, नीरोगता और शारीरिक पराक्रम जिस प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है, मनुष्य की आशा, उत्साह, अध्यवसाय, कष्टसहिष्णुता, श्रमशीलता, तितिक्षा और अटल प्रतिज्ञता आदि का सञ्चार और परिपुष्टि भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। जैसे दयानन्द अपने जीवन में निष्कलंक ब्रह्मचर्य का परिचय देकर अपनी विद्या, पाण्डित्य और प्रतिभा आदि विषय में असाधारणत्व को प्रतिष्ठित कर गये हैं, वैसे ही वे अपने जीवन में ब्रह्मचर्य के सर्वोच्च आसन पर स्थापित करके इस देश का महान् उपकार कर गये।

लेखकों से निवेदन

दयानन्द स्मृति प्रकाश में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को दिया जाता है जो महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन, व्यक्तित्व, उनके द्वारा सम्पादित समस्त ग्रन्थ, स्थापित संस्थाओं, कार्यों व उनके प्रयोजनों का प्रचार प्रसार करते हुए दयानन्द को दयानन्द के कार्यों, दयानन्द के मन्तव्यों, मान्यताओं, धारणाओं को स्थापित करते हैं, अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजे जो दयानन्द के अनुरूप हो । कृपया लेख के अन्त में अपना पूरा पता व चल-दूरभाष अवश्य लिखें।

—सम्पादक

सत्य-असत्य के निश्चय के अचूक शस्त्र (साधन)

- आठ प्रमाण -

प्रमीयते येन तत्प्रमाणम्

जिससे यथार्थ जानकारी हो वह प्रमाण कहाता है। इनके द्वारा सत्यासत्य का निश्चय कर मानव सुख लाभ करता है।

1. प्रत्यक्ष:-

जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोतादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं।

2. अनुमान:-

किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अंग को प्रत्यक्ष देखने के पश्चात् उसके अदृष्ट अंगों का, जिससे यथावत ज्ञान होता है, उसको अनुमान कहते हैं।

3. उपमान:-

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो, उसको 'उपमान' कहते हैं।

4. शब्द:-

आप्तोपदेश: शब्द:। जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा, परोपकार-प्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो, और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो, जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं, उन्हीं को शब्द-प्रमाण जाने।

5. ऐतिह्य:- जो इति ह अर्थात् इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार किया, जो शब्द प्रमाण के अनूकुल हो जो कि असम्भव और झूठ लेख न हो, उसी को ऐतिह्य (इतिहास) कहते हैं।

6. अर्थापत्ति:- जो एक बात कहने से दूसरी बात बिना कहे समझी जाय, उसको अर्थापत्ति कहते हैं।

7. सम्भव:- सम्भवति यस्मिन स सम्भव: अर्थात् जो प्रमाण, युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो, वह सम्भव कहाता है।

8. अभाव:- न भवति यस्मिन सोऽभाव: अर्थात् अभाव के निमित्त से जो ज्ञान होता है, उसे अभाव प्रमाण कहते है।

इन आठ प्रमाणों से मानव सत्यासत्य का निश्चिय कर योग्य व्यवहार करे, अन्यथा कभी न किया करें। बिना इन प्रमाणों के जाने और व्यवहार में लाये, मानव जाति का सुखी होना सम्भव नहीं।

महर्षि दयानन्द का अंगद चरण

'खण्डन मण्डन'

-बिहारीलाल शास्त्री

जिस प्रकार पूरा जोर लगाने पर भी असुर समूह रावण की सभा में अंगद के चरण को टस से मस न कर सके थे, उसी प्रकार आर्य समाज के घोर विरोधी, पोप मंडली के पंड़ित सिर धुन कर भी सत्यार्थ प्रकाश की मौलिक मान्यताओं को शास्त्र विरुद्ध सिद्ध नहीं कर सके हैं। इस समय मेरे सामने पुस्तक रक्खा है-''सत्यार्थ प्रकाशालोचना– इसके लेखक हैं–कविरत्न श्री पं. अखिलानन्द शर्मा जी। यह पहले आर्योपदेशक रहे, पुन: आर्यसमाज से पृथक् होकर ऋषि के सिद्धान्तों के, व्यक्तित्व के भी घोर-शत्रु बन गये। आर्य समाज से यह क्यों निकल गये उसका आभास इसी पुस्तक में लिखी एक अन्योक्ति से होता है–

'रे बाल कोकिल करीर मरुस्थलीषु,
किं दुर्विदिग्ध मधुर ध्वनि मातनोष्वि।
अन्य: स कोऽपि सहकार तरु प्रदेशो,
राजन्तियत्र तव विभ्रमभाषितानि।'

अर्थ – अरे बाल कोयल, इन करीर के मरुस्थल में क्यों मधूर कूजन कर रहा है? वह आमों का बाग कोई और है, जहाँ तेरे मीठे बोल शोभित होंगे। आर्यसमाज को उन्होंने करीर मरुस्थल समझकर छोड़ा, और सनातन धर्म सभायें उन्हें वास्तव में रसालतरू प्रदेश सिद्ध हुई। आर्य समाज में तो रहना ऐसा ही है कि-

'सीस उतारे भुइँ धरै,
तो पैठे घर माहिं'

वास्तव में यहाँ पंडितों का आदर नहीं है।

पर उपदेशकों को, पंड़ितों को समझ लेना चाहिये कि आर्य समाज में मौज उड़ाने को नहीं आना है। बलिदान के लिये आना है। हमारा पथ प्रदर्शक आर्य पथिक पूज्य पं. लेखरामजी का बलिदान है। हमारा विचार है कि इस आलोचना की पूरी पड़ताल की जाये किन्तु यह विचार आते ही दिल बैठ गया कि यह पुस्तक छपायेगा कौन? **आर्य समाज में इस समय मूर्खों के डंके बज रहे हैं। सिद्धान्ती पंडित सिर धुनकर रो रहे हैं। ढोंगी पूजा पा रहे हैं, और विद्वान् अनादृत पड़े हैं।** विद्वानों पर पैसा नहीं और मूर्खों पर ज्ञान नहीं। धनलक्ष्मी वाहनों के पास ही रहता है अत: स्थालीपुलाक न्याय से दो उदाहरण इस ग्रन्थ के दे रहे हैं। ताकि सिद्धान्त प्रेमी आर्य जनता यह जान सके कि ऋषि सिद्धान्तों का खण्डन करने वालों ने कैसी कैसी धूर्तता से काम लिया है और उन लोगों का ज्ञान भी कितना सीमित था।

श्री कविरत्न जी- 'चंद्र मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहू, केतु, रवि ये नाम संसार में नवग्रहों के प्रसिद्ध हैं। इन नामों से यदि ईश्वर का ग्रहण किया जाय तो ज्योतिष नामक एक वेदांग ही व्यर्थ हो

जाता है। परन्तु यहाँ क्या है।

'बूढ़ा मरे या जवान, हमें हत्या से काम ।'

समीक्षा- उक्त कहावत कविरत्न जी पर ही घटती है-

वेद मरे वा पुरान- हमें खण्डन से काम। जिस बात को वेद कह रहा है, पौराणिकों का पंचम वेद महाभारत बता रहा है। कविरत्न जी उसका उपहास उड़ाते है। ये नाम ईश्वर के होने से ज्योतिष व्यर्थ कैसे हो जायेगा ? आध्यात्मिक अर्थ और होते हैं, लौकिक अर्थ और। अखिलानन्द जी को वेदान्त दर्शन ही देख लेना था।

'आकाशास्तल्लिंगात्।'

इस पर भगवान शंकराचार्य जी के शब्द हैं-

'कुतः संशयः उभयत्र प्रयोग दर्शनात्।'

पूर्व पक्ष की इस शंका का कि आकाश शब्द पंच भूतों वाले आकाश के लिये आता है, वा ब्रह्म के लिये ? तो आचार्य शंकर ने उपर्युक्त उत्तर दिया है कि 'दोनों अर्थों में देखा जाता है, फिर संशय क्यों ?' कविरत्न जी ने आगे की पंक्तियों में आकाश, वायु, पृथ्वी आदि का नाम ईश्वर के लिखने पर भी आक्षेप किया है। उनके इस आक्षेप पर भगवान शंकर दंड प्रहार करके आक्षेप को धिक्कार रहे हैं। अच्छा अब वेद में चन्द्रादि नाम ईश्वर के देखिये-

'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्रायुस्तदु चन्द्रमाः। तवेवशुक्रंतद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः' (यजु. 3211)

इसमें आदित्य (रवि) चन्द्रमा, शुक्र ये तीन नाम ईश्वर के माने हैं। ग्रहों के नहीं। अग्नि, वायु, आपः (जल) ये नाम ब्रह्म के बताये हैं। पंचभूतों के नहीं। उक्त अर्थ भी आचार्य महीधर और उब्बट के माने हुए अर्थ हैं अब अखिलानन्दजी का नवग्रह और पंचभूतों के ही ये नाम हैं, यह पक्ष धूल में मिल जाता है, और आचार्य शंकर और स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त सही रहता है कि उक्त नाम दोनों अर्थों में आते हैं।

अब आगे महाभारत को देखिये-

"चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्नग्रहो ग्रहपतिर्वर,
अत्रिरत्र्या नमस्कर्त्ता मृगवाणापणाऽनघः।"

म.भा.अनुशा पर्व अ. १७।३८

टीकाकार श्री नीलकंठ ने उक्त श्लोक में आये ग्रह शब्द का अर्थ राहू किया है और ग्रहपति का अर्थ मंगल किया है। वर का अर्थ ब्रहस्पति और शुक्र किया है। अत्रि का अर्थ बुध किया हैं। ये नौओं नाम श्रीशंकर ईश्वर का ही नाम है। अब और क्या प्रमाण चाहिये ? दर्शन वेद और महाभारत अखिलाननद जी के लेख पर थूक रहे हैं और ऋषि दयानन्द का समर्थन कर रहे हैं।

अब आलोचना का दूसरा उदाहरण देखिये-

अदोयद्दारुप्लवते सिन्धो।

पारे अपूरुषम् ।

तदारभस्व दुर्हणस्तेन ।

गच्छ परस्तरस् ।। (८।८।१३।३)

जगन्नाथजी का इस प्रकार का वर्णन मिलता है। इसका अर्थ इस प्रकार है। (सिंघो:पारे) समुद्र के तट पर। (अपूरुषम्) पुरुष भिन्न (अदो यद्दारु) यह जो जगन्नाथ स्वरूप काष्ठमूर्ति । (प्लवते) चलती है। (दुर्हण:) दु:ख से प्राप्तव्य (तदारभस्व) उस जगन्नाथ का अर्चन प्रारम्भ कर। (तेन) उस अर्चन के द्वारा । (परस्तरम्) परात् पर परमेश्वर को। (गच्छ) प्राप्त हो। सायणाचार्य ने भी इस मंत्र से यही आशय निकाला है। जिसका वर्णन वेद में है। दयानन्द उसका मजाक उड़ाता है यही तो नास्तिको का लक्षण है।" (पृ. १६३ व १६४)

अब अखिलानन्द जी का अर्थ देखिये-

"जगन्नाथ स्वरूप काष्टमूर्ति चलती है" इस दारु शब्द में जगन्नाथ और मूर्ति कहाँ से आ टपके? प्लुसंतरणे धातु का अर्थ तैरना है या चलना?

आदि अनेकों प्रश्न इस अर्थ पर हो सकते हैं। पर सबसे अधिक पाप किया है कविरत्न जी ने इस मंत्र का पाठ बदल कर। आज तक वेद में पाठ बदलने का साहस किसी पंडित ने नहीं किया था। किन्तु अखिलानन्द जी ने यह दु:साहस भी कर डाला। पाठ "दुर्हणो" को दुर्हण बना दिया। भगवद् वाणी में परिवर्तन करना घोर नास्तिकों का काम होता है। अखिलानन्द जी को धर्म पर, वेद पर विश्वास होता तो ऐसा जघन्य कृत्य न करते। जर्मन, पूना, वाराणसी चाहे जहाँ का छपा ऋग्वेद देखो "दुर्हणो" पाठ ही मिलेगा। यह "दुर्हणु" का संबोधन में रूप है। दुर्हण: प्रथमा है जिसकी संगति कहीं नहीं बैठती। यह विशेषण है तो किसका? कर्त्ता है तो किस क्रिया का? कविरत्न जी को इससे क्या प्रयोजन। मूर्खों को बहका कर रुपये ऐंठने से मतलब। इस अनर्थ पर विद्वान् उन्हें कोसते रहें। व्याकरण सिर पीटता रहे पर मूर्ख मठधारी महन्तों को प्रसन्न करके रुपया जो ऐंठना था। अब सायणाचार्य का अर्थ भी देखिये-

आचार्य सायण ने पाठ नहीं बदला है। वहाँ पाठ "दुर्हणों" ही है और इसे संबोधन का ही रूप माना है।

भाष्य- "अदोषि प्रकृष्ट देशे वर्तमानमपूरुषम् निर्मात्रापुरुषेण रहितम् यद्दारु दरुमयं पुरुषषोत्त्माख्यं देवता शरीरं सिंघो: पारे समुद्र तीरे प्लवते जलस्यो परिवर्त्तते तद्दारु हे दुर्हणो दु:खेन हननीय केनापि हन्तुमशक्य हे स्तोत: आरभस्व उपास्स्वैत्यर्थ: तेन दारु मवेन देवे नोपास्यमानेन परस्तरमति शयेन तरणीयमुत्कृषंम् वैष्णवं लोकं गच्छ"।

अर्थ- यह दूर देश में वर्तमान बनाने वाले पुरुष से रहित दारूमय पुरुषोत्तम नाम का देवता शरीर समुद्र के किनारे जल के ऊपर है। उस दारू को हे दुर्हणो: दु:ख से हननीय किसी से भी न मारने योग्य हे

स्तोत: उपासना कर उस उपासना किये हुए दारूमय देव के द्वारा अतिशय तरणीय उत्कृष्ट वैष्णव लोक को जा"।

उक्त अर्थ में जगन्नाथ का नाम नहीं है, पर आशय वही निकलता है। किन्तु अखिलानन्द जी की तरह सायण ने अर्थ में धाँधली नहीं की है। पर सायण का अर्थ भी मूर्ति पर नहीं घटता। यह मूर्ति बनाने वाले से रहित कहा है? और जल के ऊपर कहा है? बढ़इयों से बनाई हुई है और स्थल के ऊपर है। अखिलानन्द और सायण दोनों ही पकड़ में आ गये। दोनों का अर्थ अव्याप्ति दोष से दूषित है। दोनों का अर्थ जगन्नाथ की मूर्ति में नहीं घटता। पर सायण भाष्य में "हे दुर्हणो" शब्द ध्यान देने योग्य है। यह संबोधन है जिसे बदलकर अखिलानन्द ने "दुर्हण:" करके वेद में पाठ परिवर्तन कर पाप किया है। अब सायण का दूसरा अर्थ भी देखिये- जिसे अखिलानन्द छिपा गये।

"अपर आह हे दुर्हणो दु:खेन हननीये दुष्टहनु युक्ते, हे अलक्ष्मि। सिंघो:पारे समुद्र तीरं प्रति अपुरुषम् पुरुष जनैर्वि युक्त मदोऽस्मतो दूरे देशे वर्तमानं यद्दारु दारु मनयी नौ: प्लवते तद्दार्वारभस्व परिगृहाण। गृहीत्वा च तेन दारुणा परस्तर मतिश ये न तरणीयं ब्रह्मणस्यतिना प्रेरितासनी द्वीपान्तरं गच्छ।"

अर्थ:- दूसरा कहता है- हे दु:ख से हननीय वा दुष्ट हनु (ठोड़ी) युक्त है अलक्ष्मी, समुद्र के तीर पुरुषों से दूर जनों से रहित हम से दूर देश में वर्तमान जो दारुमयी नौका है उससे अतिशय तरणीय ब्रह्मणस्पति से प्रेरित द्वीपान्तर को जा।" इस अर्थ में अलक्ष्मी (गरीबी) से कहा जा रहा है कि नाव पर चढ़कर दूसरे द्वीप में चली जा। जगन्नाथ जी तो हवा हो गये। पर इतना तोड़ मरोड़ और वागाडम्बर करने पर भी वास्तविक अर्थ से दोनों (क.र.व सा) दूर खड़े हैं। ठीक अर्थ क्या है? सीधा-सादा है। इस मंत्र का देवता अलक्ष्मीघ्न (गरीबी को दूर करने वाला) है। देवता(आशय) को समझे बिना अर्थ संगति कैसे हो सकती है।

दुर्भाग्य का नाश कैसे हो तो भगवान् उपदेश करते हैं-

हे अभागे; जो यह काष्ठ प्राकृत रूप में (अपुरुष) समुद्र के किनारे तैर रहा है उसकी रचना कर (आरभस्व) नाव जहाज आदि बना उससे समुद्र पार जा।

केवल शब्दार्थ है ऊपर बिना खींच-तान से। भगवान उपदेश करते हैं समुद्र पार व्यापार करने का, नौका निर्माण का, इसके द्वारा अलक्ष्मी दुर्भाग्य, गरीबी का नाश होगा। यह अर्थ संसार में प्रत्यक्ष संगत हो रहा है। जिन यात्रियों ने समुद्र यात्रायें की, उन्होंने यश भी कमाया और धन भी। अपने राज भी स्थापित किये, और संस्कृति भी विस्तृत करी। और हमारे घोंघा पण्डित जगन्नाथ जी को पूजते रहे या मंत्र पढ़-पढ़कर अलक्ष्मी को द्वीपान्तर को भगाते रहे। पर वह द्वीपान्तर को तो न गई। द्वीपान्तर में तो लक्ष्मी जा विरोधी और भारत में अलक्ष्मी दरिद्रता का डेरा लग गया। यह भेद है इन पौंगा पण्डितों और ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण का।

स्वामीजी ने रवि, सोम आकाश, अग्नि आदि के अर्थ ईश्वर विषयक करके उन लोगों का मुख बन्द कर दिया कि जो लोग आर्य जाति को नानादेव पूजक बताते थे और ईश्वर के एकत्व ज्ञान से रहित कह

कर वेद वालों को बदनाम करते थे। ऋषि ने शास्त्र सम्मत सही अर्थ करके वैदिक धर्म सनातन धर्म का गौरव स्थापित किया। किन्तु ये अदूरदर्शी, परिणामानभिज्ञ पेट पालू पोप ऋषि के अभिप्राय से स्वयं दूर रहे और जगत को दूर करते रहे।

उक्त मन्त्र का अन्योक्ति रूप में एक और भी अर्थ है- 'हे अभागे मनुष्य जो यह काठ रूपी मन स्वाभाविक रूप में संसार सागर में तैर रहा है, इसका धर्म से संस्कार कर और इससे भवसागर पार जा'

वेदों के ऐसे सुन्दर अर्थों को मतवालों ने और मन्दमति याज्ञिकों ने बिगाड़ा।

उक्त दो उदाहरणों से पाठक समझ सकते हैं कि सत्यार्थालोचन का क्या मूल्य है।

क्व दयानन्द सिद्धान्ताः क्वच पामर पण्डिताः। मंडूक चरणा धातैः प्राकारध्वै सनैकुतः।

नोट- इससे पहले दो मन्त्रों में भी अलक्ष्मी को दूर करने का साधन मेघ, सिंचाई के साधन और पुरुषार्थ को बताया है।

मुनि का लक्षण शीर्षक से लिखते हुये श्री अखिलानन्दजी मुनिवर दयानन्द पर आक्षेप करते हैं-

'लोभ इतना कि शाक भी दो पैसे से ज्यादा न आवे, मूली के बर्क दिन में हों तो पत्ते रात में बने, इतने रंग रूप बदलने वाला दयानन्द मुनि कैसे बन सकता है?'

इस लेख से अखिलानन्द जी की विचार-शैली का अनुमान किया जा सकता है। यह व्यवहार श्री स्वामीजी के लोभ का परिचय दे रहा है वा मितव्ययिता का? जनता के धन को खीर, हलुवे, मलाई में बरबाद करने वाले पोप लोग इस मितव्ययिता के महत्व को क्या समझें? श्री स्वामी जी जनता के धन को अपने स्वाद में व्यय न करके वेद प्रचार में लगाते थे। जनता के माल को मल बनाने वाले अखिलानन्द जैसे पोप इसे लोभ कहें तो यह उनकी दुर्बुद्धि का नमूना ही समझिये।

निर्धन भारतवर्ष का संन्यासी पत्ते खाकर प्रचार करे यही उसकी महत्ता है। स्वामी जी मितव्ययी थे। महात्मागांधीजी भी मितव्ययी थे। अपने पर कम खर्च करने को जो लोभ समझता है वह महामूर्ख है। लोभ वह है कि धन होते हुए भी दीन दुःखी जनता की सेवा न की जाये। व धन के संग्रह में उचित अनुचित का विचार न रहे।

पब्लिक के माल पर गुलछर्रे उड़ाना यह पौराणिक संन्यासियों का, पण्डितों का काम है। आर्य समाज के विद्वानों का नहीं। उक्त व्यवहार से तो श्री स्वामी जी त्यागी, प्रशंसनीय ही ठहरते हैं। ऐसा ही अनेक बेहूदा बातों से यह ग्रन्थ भरा हुआ है।

दयानन्द के भेद को समझ सकें क्या पोप।
जिनका परधन हरण से हुआ बुद्धि का लौप।।

भारतीय स्वतंत्र संग्राम में

आर्यसमाज की देन

होमरुल आन्दोलन की सुप्रसिद्ध नेता श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने एक प्रसंग में ठीक ही कहा था कि आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भरतीयों के लिये' की घोषणा की। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन का विवेचन करने से पूर्व उसके प्रवर्तक ऋषि दयान-द के स्वराज्य, स्वतंत्रता, स्वाधीनता एवं स्वदेशी विषयक विचारों एवं क्रिया कलापों से परिचित होना आवश्यक हैं। आर्यसमाज के प्रवर्तक अपने समकालीन तथा समान धर्मा महापुरुषों से अनेक बातों में पूर्णतया भिन्न एवं अद्वितीय दृष्टिगोचर होते हैं। वे महान धर्माचार्य, उच्चकोटि के वेदज्ञ तथा अप्रतिम समाज संस्कारक तो थे ही, उनमें अपने देश के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का भाव तथा उसे स्वतंत्र कराने की अदम्य आकांक्षा भी थी। यही कारण है कि वे अपने से पूर्ववर्ती शंकर, रामानुज आदि उन दार्शनिकों से सर्वथा भिन्न हैं जिन्होंने दर्शन एवं तत्व चिंतन के क्षेत्र में तो महत्त्वपूर्ण योगदान किया, किन्तु जिनकी अपने पराधीन राष्ट्र के प्रति देन नगण्य ही है।

आधुनिक भारत के निर्माता और पिता कहे जाने वाले महान समाज-सुधारक राममोहनराय ने यद्यपि राष्ट्र के सर्वांगीण पुनर्जागरण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई परन्तु जहाँ तक इस देश पर विदेशी शासन का प्रश्न था, वे इस सम्बन्ध में कोई क्रान्तिकारी दृष्टिकोण नहीं अपना सके। इसके विपरीत उन्होंने तो यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि परकीयों का शासन भारत वासियों के लिये एक देवी वरदान के तुल्य है। अपनी संक्षिप्त आत्मकथा में उन्होंने लिखा- "यूरोपीय लोगों को अधिक प्रतिभासम्पन्न, दृढ़ तथा अपने व्यवहार में सन्तुलित पाकर मैंने उनके प्रति अपने पूर्वाग्रह को छोड़ दिया तथा धीरे -धीरे उनके प्रति मेरा मानस अधिक अनुकूल बनता गया। अब तो मेरा यह विश्वास बन गया है कि उनके शासन से, जो यद्यपि एक विदेशी जुवा ही है, यहाँ के लोगों की शीघ्र ही निश्चित रूप से उन्नति हो जायेगी।" उनके ऐसे ही कथनों के आधार पर जे.एन.फकुहिर जैसे पूर्वाग्रही पादरी लेखक को यह लिखने का साहस हुआ था- 'He was the first Indian who realised the great good which the country would reap from its connection witth Britain.' अर्थात् वह प्रथम भारतीय था जिसने यह अनुभव किया कि ब्रिटेन से सम्बन्ध रखने से इस देश का कितना भला होगा।

<u>**दयानन्द का राष्ट्रवाद:**</u> इसके विपरीत स्वामी दयानन्द मूलत: राष्ट्रवादी थे। योगी अरविंद के शब्दों में 'उनमें राष्ट्रीय भावना सहज वृत्ति के रूप में विद्यमान थी और वे उसे उद्दीप्त कर सके थे।' फ्रैंच विद्वान् रौमा रौला का दृढ़ विश्वास था कि दयानन्द भारत के पुनर्जागरण का अग्रदूत थे और उन्होंने भारत की राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने में अद्‌भुत कार्य है। दयानन्द ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'स्वराज्य' का शंखनाद उस समय किया जब राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) का जातकर्म भी नहीं हुआ था। इतिहास गवाह है कि 1906 ई. में सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण कांग्रेस के मंच

से किया था और 1916 ई. की लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य को प्रत्येक भारत वासी का जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया था, और यह तो और भी बाद की बात है, जब 1929 ई. में लाहौर अधिवेशन के अवसर पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति को अपना ध्येय घोषित किया। परन्तु स्वामी दयानन्द तो उससे आधी शताब्दी पूर्व ही स्वराज और स्वाधीनता के महत्त्व का प्रतिपादन कर चुके थे। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में स्वराज्य की महत्ता का निरूपण करते हुए उन्होंने लिखा- **"चाहे कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के सामने कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्णतया सुखदायक नहीं होता।"**

इसी महापुरुष ने सर्वप्रथम वेदमंत्रों में स्वराज्य और राष्ट्र-भावना के दर्शन किये। अपने सुप्रसिद्ध प्रार्थना परक ग्रन्थ 'आर्याभिविनय' में वे लिखते हैं- **अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।** अपने व्याख्यानों में भी स्वामी दयानन्द यदा कदा स्वदेशी राज्य का गौरवगान करना नहीं भूलते थे। उनके एक व्याख्यान में इसीप्रकार के विचारों को सुनकर एक बार एक अंग्रेज कलेक्टर ने कहा था कि यदि आपके भाषण के अनुसार लोग चलने लग जायें तो हमें अपना बोरिया बिस्तर समेटना पड़ेगा। क्या यह 1942 ई. के भारत छोड़ो (quit India) आन्दोलन की पूर्व ध्वनि नहीं थी?

स्वामी दयानन्द ने केवल वैचारिक और सैद्धान्तिक आधार पर ही स्वतंत्रता की आवश्यकता और महत्ता का निरूपण किया हो, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्षतया भाग लिया था, इसकी संभावना भी इतिहासकारों ने व्यक्त की है। 1857 में भारतवासियों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रथम बार सशस्त्र संघर्ष किया था। उस समय स्वामी दयानन्द 33 वर्ष के युवा संन्यासी थे। इतिहास के विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि दयानन्द के समान क्रान्तदर्शी तथा स्वदेश के प्रति अनन्य आस्था का भाव रखने वाला व्यक्ति क्रान्ति की इस हलचल में सर्वथा मौन होकर बैठा रहे, यह असंभव है। पं. जयचन्द्र विद्यालंकार ने इस सम्बन्ध में लिखा है- साधु सम्प्रदाय में तो बराबर यह अनुश्रुति चली आती है कि दयानन्द ने 1857 के संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। विद्यालंकार के ही शिष्य और साथी श्री पृथ्वीसिंह मेहता, विद्यालंकार ने देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में दयानन्द के भाग लेने की संभावना को और अधिक उजागर करते हुए लिखा- यह बात मान लेना आसान नहीं है कि दयानन्द के सदृश भावना प्रवण और चेतनावान् हृदय और मस्तिष्क का युवक उसके प्रभाव से अछूता बचा रहा हो और उस युद्ध की सफलता विफलता की उस पर कोई प्रतिक्रिया न हुई हो।

कालान्तर में देश के सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट होने तथा समकालीन ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, ब्रिटिश इण्डिया एसोसियेशन आदि की सामाजिक, राजनैतिक गतिविधियों को निकट से देखते तथा तत्कालीन देशभक्त नेताओं के सम्पर्क में आने के पश्चात स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया कि देश के स्वाधीन होने की अनिवार्य शर्त है कि देशवासियों की सर्वतोमुखी सामाजिक उन्नति। फलत: उन्होंने एक

भाषा, एक भाव को और एक धर्म के प्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द ने ही सर्वप्रथम भारत की स्वतंत्रता की दीपशिखा को प्रज्ज्वलित किया था, जिसके प्रखर आलोक में आने वाली पीढ़ियों ने एक ओर देश को स्वाधीन बनाने हेतु अहिंसा पूर्ण वैधानिक संघर्ष किया तो दूसरी ओर आतंकवादी सशस्त्र चेष्टाओं के द्वारा भी विदेशी शासन को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इस द्विविधि में स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज के योगदान को स्पष्ट करना आवश्यक है।

स्वतंत्रता के लिए वैधानिक संघर्ष और आर्यसमाज:

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय संदर्भ में स्वामी दयानन्द ने ही सर्वप्रथम सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य को वरीयता प्रदान की थी। स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु सतत संघर्ष करने की यही भावना दयानन्द के अनुयायियों में भी संक्रमित हुई। आर्यसमाज ने अपने जन्म काल से ही देश को स्वाधीन बनाने के कार्यों एवं प्रयत्नों में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। राष्ट्रीयता का मूल मंत्र तो मानो आर्य समाजियों को जन्म घुट्टी के साथ ही दिया जाता था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो भी संवैधानिक या अन्य प्रकार के प्रयत्न किये गये, उनमें आर्यसमाज का सर्वात्मना योगदान रहा। 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के साथ ही हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास आरम्भ होता है। प्रारम्भ में कांग्रेस के नेताओं ने औपनिवेशिक स्तर (Dominion Status) के राज्य के लिये ही मांग की थी, परन्तु धीरे-धीरे यह माँग पूर्ण स्वराज्य के रूप में परिवर्तित हो गई। कांग्रेस को अभिजात्य वर्ग के बाद विवाद क्लब से बदल कर स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले तपस्वी बलिदानियों की संस्था बनाने का श्रेय महात्मा गाँधी को है। इस संदर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि महात्मा गाँधी ने श्री गोपालकृष्ण गोखले को अपने राजनैतिक गुरु के रूप में स्वीकार किया था। और यह भी इतिहास सिद्ध तथ्य है कि गोखले को राजनैतिक दीक्षा महामति महादेव गोविंद रानाडे से प्राप्त हुई थी। न्यायाधीश रानाडे स्वामी दयानन्द के अनुयायी तथा उसके द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा के सभासद थे रानाडे के राजनैतिक, सामाजिक विचारों के विकास में दयानन्द का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रमाण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार प्रकारान्तर से महात्मा गाँधी की नीति रीति, विचारों और सिद्धांतों में स्वामी दयानन्द का प्रभाव स्पष्ट प्रतिफलित होता है। महात्मा गाँधी जब दक्षिण अफ्रीका के कार्य को समाप्त कर आये तो भारत में उन्हें आर्य समाजियों द्वारा सक्रिय सहयोग और समर्थन प्राप्त हुआ। देश के लाखों आर्य समाजी गाँधीजी द्वारा संचालित असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि आन्दोलनों में सम्मिलित हुए तथा उन्होंने महात्मा गाँधी के सत्य, अहिंसा आदि के सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए स्वदेशी का व्रत धारण किया। विदेशी वस्त्रों का त्याग, नशा निवारण, दलितों का उत्थान, शराबबंदी, गौ सेवा आदि के रचनात्मक कार्यों में भी आर्य समाजी पीछे नहीं रहे। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये हजारों आर्य समाजियों ने कारागार की यातनायें तथा अन्य प्रकार के कष्ट सह कर आजादी का पथ प्रशस्त किया।

-डॉ. भवानीलाल भारतीय एम.ए. पीएच. डी.

वर्षा ऋतु में पालन योग्य

आहार-विहार

-अशोककुमार पाण्डेय

ऋतुचर्या का सम्बन्ध जहाँ दैनिक आहार-विहार से होता है । ऋतु के अनुसार सेवन योग्य पदार्थों का सेवन किया जाए, न सेवन करने योग्य पदार्थों का सेवन न किया जाए, इसी प्रकार विहार का भी पालन किया जाए और उत्तम दिनचर्या का पालन किया जाए यह शरीर और स्वास्थ्य के लिये आवश्यक भी है और हितकारी भी। यदि ऐसा न किया जाए तो बीमार होने में देर नहीं लगेगी और दवाइयों के सेवन से भी विशेष लाभ नहीं होगा। ऋतुचर्या का ठीक-ठीक पालन करने का लाभ यह होता है कि रोगी होने से बचाव होता है और शरीर स्वस्थ व बलवान बना रहता है। यदि पूर्व कर्म के फल के प्रभाव से कोई रोग हो भी जाए तो पथ्य-अपथ्य का सेवन करने से दवाइयां जल्दी और पूरा असर करके रोग को जड़ से समाप्त कर देती हैं। इसलिए स्वस्थ और निरोग बने रहने या रोगी हों तो जल्दी रोग मुक्त होने के लिए ऋतुचर्या का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्षा ऋतु में एक विशेषता है कि इसके पूर्वार्द्ध काल और उत्तरार्द्धकाल की स्थिति अलग-अलग होती है इसलिए हमें वर्षाकाल को इन दो भागों में विभक्त करके, दोनों के बारे में अलग-अलग ऋतुचर्या की चर्चा करनी होगी । पहले प्रारम्भिक काल के आहार-विहार के विषय में चर्चा करते हैं।

प्रारम्भिक काल में आहार-विहार: वर्षा ऋतु के बारे में दो खास बातें ध्यान में रखनी होगी। एक बात तो यह कि 'वर्षा स्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादय:' के अनुसार, ऋतु के प्रभाव से वर्षा काल में जठराग्नि मन्द हो जाती है, वायु कुपित रहती है जिससे गैस बनती इसलिए इस ऋतु में अपनी पाचन शक्ति का पूरा ख्याल रखना चाहिए और ऐसा सादा सुपाच्य आहार लेना चाहिए जिससे कब्ज न हो। दूसरी बात है साफ-सफाई रखने की जिसमें वातावरण की शुद्धि, पानी की शुद्धता, कपड़ों और शरीर की साफ सफाई रखना आदि काम शामिल हैं। वर्षा ऋतु में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

आहार: चूंकि वर्षाकाल शुरू होते ही पाचन शक्ति कम हो जाती है अत: इस प्रारम्भिक काल में हलका व ताजा भोजन खूब अच्छी तरह (32 बार) चबा कर किया करें। इस काल में नई कच्ची हरी घास पैदा होती है। गाय भैंस यह कच्ची घास खाते हैं इसीलिए श्रावण मास में दूध का सेवन वर्जित किया गया है। इस काल में प्रतिदिन छिलके वाली मूंग की दाल अवश्य खाना चाहिए। यह पेट को ठीक रखने का विशेष गुण रखती है। हरी शाक सब्जी को खूब अच्छी तरह धो साफ करके ही बनाना चाहिए। मौसमी फलों में जामुन, मक्के के भुट्टे और पके हुए मीठे आम का सेवन उचित मात्रा में अवश्य करना चाहिए। आम चूस कर खाना सुपाच्य और बलवीर्यवर्द्धक होता है। आम का रस निकाल कर, दूध मिला कर अमरस बनाते हैं। यह अमरस भारी होता है अत: अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। एक गिलास रस में आधा चम्मच शुद्ध घी और आधा चम्मच पिसी सौंठ मिलाने से इसका वात दोष नष्ट हो जाता है। यदि 40 दिन तक सुबह

शाम केवल आमचूस कर या आमरस पी कर पेट भरें तो शरीर सुडौल, हृष्ट-पुष्ट और चेहरा भरा हुआ व कान्तिपूर्ण हो जाता है। शरीर में रक्त व मांस की वृद्धि होती है।

आम और जामुन पौष्टिक और रक्तवर्द्धक मौसमी फल होते हैं। आम पका हुआ और मीठा ही खाना चाहिए क्योंकि खट्टा आम धातु को दूषित और क्षीण करता है। इसी प्रकार जामुन अच्छे, बड़े आकार के और पके हुए ही खाना चाहिए। भोजन के बाद, दोपहर में थोड़े जामुन, नमक बुरक कर, रोजाना खाना चाहिए। जामुन में सौम्य और सुपाच्य लोहतत्व होता है जो रक्त और हिमोग्लोबिन बढ़ाता है। रक्ताल्पता (एनीमिया) से पीड़ित व्यक्ति के लिए ये दोनों फल बहुत गुणकारी हैं। जामुन और कच्चे आम का शर्बत बहुत लाभप्रद होता है। जामुन का शर्बत पीने से जी मचलाना, उल्टी, दस्त, खूनी दस्त और बवासीर में आराम होता है। आम और जामुन की गुठली पीस कर बारीक चूर्ण करके सम मात्रा में मिला लें। इसे आधा-आधा चम्मच सुबह शाम पानी के साथ पीने से आमतिसार यानी आंव खून के दस्त तथा मधूमेह रोग में आराम होता है। इस ऋतु में मक्का के भुट्टे आते हैं। भुट्टा भून कर खाएं और एक कप छाछ पी लें।

भुट्टे का किस और किस से अन्य व्यंजन बनते हैं?

वर्षा ऋतु के प्रारम्भिक दिनों में मधुर, अम्ल और लवण रस वाले पदार्थों का सेवन अवश्य करना चाहिए। आहार में वात कुपित करने वाले पदार्थ जैसे रूखे, अधिक गर्म, कसैले, कड़वे, चटपटे स्वाद वाले, देर से पचने वाले गरिष्ठ पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। जहां तक सम्भव हो सके सुबह का भोजन 11 बजे से पहले और शाम का भोजन सूर्यास्त होने से पहले कर लेना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो सोने से दो ढाई घण्टे पहले अवश्य कर लेना चाहिए। वर्षा ऋतु में वात कुपित होता है, पित्त संचित होता है कफ शान्त रहता है। इस स्थिति को ध्यान में रख कर पथ्य एवं अपथ्य का पालन करना चाहिए।

विहार- इस ऋतु में शरीर की त्वचा की रक्षा करने और इसे साफ स्वच्छ रखने का पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वर्षा ऋतु में त्वचा रोग आसानी से हो जाते है। इस ऋतु में तैल मालिश करके या उबटन लगा कर स्नान करना चाहिए। हलका व्यायाम करना और ढीले हलके वस्त्र पहनना चाहिए शरीर और वस्त्रों की साफ-सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए। इस ऋतु में दिन में सोना और देर रात जागना व सुबह देर तक सोये रहना, अति व्यायाम, अति आहार, अति श्रम और अति सहवास शरीर और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक काम हैं अतः इन कामों में अति नहीं करना चाहिए। जब आकाश में बादल छाये हुए हों तब जुलाब करने वाले औषधि का सेवन नहीं करना चाहिए । नदी में बाढ़ हो तब उसके पानी से स्नान नहीं करना चाहिए। पीने का पानी गन्दा या मटमैला हो तो उबाल कर ठण्डा करके पीना चाहिए क्योंकि गन्दे पानी से बहुत बीमारियाँ पैदा होती हैं।

अन्तिमकाल में आहार विहार

आहार- वर्षा ऋतु के अन्तिम दिनों में मौसम का हाल थोड़ा बदल जाता है जब कभी वर्षा हो जाती

है तो वातावरण ठण्डा हो जाता है और जब धूप निकलती है तो गड्ढ़ों, पोखरों व तालाब के किनारे रुका हुआ पानी सड़ने लगता है जिसमें मच्छर व छोटे-छोटे कीड़े पैदा होते हैं। इन मच्छरों और हरे कीड़ों का प्रकोप इन दिनों बहुत बढ़ जाता है। पतंगे भी इन्ही दिनों में दिखाई देते हैं। वर्षा काल के बाद शरद ऋतु आती है जिसमें वर्षाकाल में संचित हुआ पित्त कुपित होता है इसलिए तले हुए, तेज मिर्च, मसालेदार खट्टे, नमकीन, बेसन के बने, मादक और मांसाहारी व्यंजनों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। इस काल में पित्त का शमन करने वाला आहार लेना चाहिए।

विहार- इन दिनों का रहन सहन ऐसा होना चाहिए जो मच्छरों से बचाने वाला हो जैसे मच्छरदानी लगा कर सोना और घर के अन्दर व बाहर साफ-सफाई रखना। धूप से बचना चाहिए। घर से बाहर निकलते समय एक गिलास ठण्डा पानी पीकर निकलना चाहिए। दिन भर, एक घण्टे के अन्तर से 1-1 गिलास पानी पीते रहना चाहिए। बाजार का दही और दही की लस्सी का सेवन नहीं करना चाहिए। शरीर के अन्दरूनी बाल साफ रखना चाहिए। सिर को धूप से बचाना चाहिए।

वर्ष भर तक बड़ी हरड़ का सेवन रसायन के रूप में करने वालों को वर्षा ऋतु में बड़ी हरड़ का सेवन, बराबर मात्रा में सेन्धा नमक मिला कर, 1 या 2 चम्मच, प्रातः ठण्डे पानी के साथ लेना चाहिए। क्वार का महीना यानी शरद ऋतु में यह अनुपान बदल जाता है यानी इस ऋतु में सेन्धा नमक न लेकर, शक्कर मिलाना चाहिए। बड़ी हरड़ का सेवन करते समय ऋतु बदलने के साथ हरड़ के साथ लेने वाला अनुपान पदार्थ बदल जाता है। अनुपान के साथ हरड़ सेवन रसायन के रूप में जीवन भर किया जा सकता है।

चिकित्सा हमें स्वास्थ्य लाभ देता है और वकील हमें न्याय दिलाने में सहायक होता है। लेकिन हमें इन दोनों की आवश्यकता तभी पड़ती है जब हम उचित आहार-विहार और आचार-विचार का पालन नहीं करते। यदि हम उचित आहार-विहार का नियमित एवं विधिवत् ढंग से पालन करें तो बीमार ही क्यों पडें? अगर बीमार ही न पड़ें तो दवाखाने जाने या डॉक्टर को बुलाने की नौबत ही क्यों हो? इसी प्रकार यदि हमारा आचार-विचार ठीक रखें तो ना तो हमें कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़े और न किसी वकील की सेवाएं लेने की जरूरत पड़े? अब सोचने वाली एक विशेष बात यह भी है कि यदि वकील पैरवी करने में भूल चूक कर जाए तो मुल्जिम छः फुट हवा में लटक सकता है और अगर चिकित्सा में कोई घातक भूल चूक हो जाए तो रोगी छः फुट जमीन के अन्दर जा सकता है।

श्रावणी पर्व

– (आचार्य) वैद्यनाथ शास्त्री

आर्यों के सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में पर्वों का सदा से महत्त्वपूर्ण स्थान रहा हैं धरा पर सभी मानव जातियाँ किसी न किसी प्रकार का पर्व मनाती ही हैं। पर्व शब्द का अर्थ पूरक भी है और ग्रन्थि भी है। यह जहाँ आनन्द से पूरित करता है वहां ग्रन्थि होने से धारक भी है। ईख के रस को ईख की ग्रन्थि सुरक्षित रखती है और बांस आदि की दृढ़ता को उसकी गांठ स्थिर रखती हैं। इसी प्रकार शरीर की स्थितिस्थापकता शरीर की ग्रन्थियों द्वारा सुरक्षित हैं।

श्रावणी आर्यों के प्रसिद्ध पर्वों में से एक महान् पर्व है। यह पर्व वैदिक पर्व है। इसका सीधा सम्बन्ध वेद के अध्यापन और अध्ययन करने वालों से है। गृह्यसूत्रों के अनुसार इस पर्व का सीधा सम्बन्ध वेद और वैदिकों से दिखलाया गया है। यह पर्व जहां पर्व है वहां एक गृह्य कर्म भी है। गृह्यसूत्रों के अनुसार श्रावणी कर्म भी इसी अवसर पर होता है और उपाकर्म–वेदाध्ययन का प्रारम्भ होता है। चार मास वर्षा के होते हैं। इनमें बराबर वेदाध्ययन चलता रहता था और पौष में जाकर उत्सर्ग किया जाता है। इसी आधार को लेकर आर्य समाज ने वेद सप्ताह इस अवसर पर आयोजन किया। वेद के अध्ययन के मार्ग को आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रशस्त किया अत: उनके द्वारा स्थापित वेद प्रचारक आर्य समाज का यह कर्त्तव्य ही है कि वह वेद के प्रचार को बढ़ावे।

श्रावणी नाम इस पर्व का क्यों है? इसका उत्तर यह है कि श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा को यह पर्व होता है अत: यह श्रावणी है। इसी श्रावणी पूर्णिमा के आधार पर ही इस मास का नाम भी श्रावणमास हैं। इस श्रावणी की भी विधि है और वह गृह्यसूत्रों और हमारी पर्व पद्धति में लिखी है — जो प्रत्येक आर्य और आर्य समाज को करनी चाहिए।

यह सब होने पर भी कुप्रथाओं और सुप्रथाओं के बीच में चलने वाले आर्यों में भी श्रावणी के वास्तविक स्वरूप के विषय में कहीं–कहीं पर अनभिज्ञता ही दिखाई पड़ती है। हमारे पत्र पत्रिकाओं में भी ऐसी बातें कभी–कभी निकल जाती हैं। दीपावलि के विषय में राम की लंका विजय के बाद की दीपावली कारण बताई जाती है और होली के विषय में प्रह्लाद का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। ये दोनों ही कल्पनायें भ्रान्त और गलत हैं। वस्तुत: ये दोनों ही गृह्यकर्म हैं इसी प्रकार रक्षा बन्धन पर्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जाता है। रक्षा बांधने की प्रथा बीच में किसी समय प्रारम्भी हुई। परन्तु श्रावणी तो वैदिक गृह्य कर्म है। वह बहुत पहले भी था और अब भी है।

एक दिन एक आर्य सज्जन कहने लगे कि श्रावणी के दिन ही चारों वेदों का ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में मिला था इसलिए यह श्रावणी पर्व मनाया जाता है। मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। क्योंकि जहाँ तक मेरा ज्ञान है मैंने ऐसी बातें कही नहीं पढ़ी हैं। यह सम्भव नहीं, ऐसी–ऐसी अनेक कल्पनायें लोग बना लेते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि श्रावणी के विषय में ऐसी कल्पनाओं को आधार नहीं बनाना चाहिए। उसके

शुद्ध स्वरूप को समझना चाहिए। रक्षा बन्धन का लौकिक और सामाजिक कृत्य भी इसी दिन पड़ता है। यह ठीक है परन्तु यह प्रथा इस पर्व का कारण नहीं।

श्रावणी और स्वाध्याय

जैसा ऊपर कहा गया है वेदाध्ययन का इस पर्व से सीधा सम्बन्ध है। श्रावणी मनाने का एक उत्तम तरीका यह है कि वेदादि सच्छास्त्रों का स्वध्याय इस पर्व से अवश्य चालू किया जावे। स्वाध्याय जीवन का रंग होना चाहिए। परन्तु ऐसे पर्वों के अवसरों से प्रेरणा लेकर ही यदि हम इस प्रवृत्ति को बढ़ावें तो अच्छा हो।

"आर्यों के जीवन का स्वाध्याय एक अंग है। स्वाध्याय में प्रमाद का हमारे शास्त्रों में निषेध है। स्वाध्याय का ज्ञान के परिवर्धन में बहुत बड़ा महत्व है। शतपथ ब्राह्मण 11।5।7।1 में स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है युक्तमना होता है, अपना परम चिकित्सक होता है, उसमें इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञा की अभिवृद्धि होती है।"

यहां पर ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रत्येक शब्द महत्त्व से भरा हुआ है। पुनः उसी ब्राह्मण में 11।5।7।10 में कहा गया है कि स्वाध्याय न करने वाला अब्राह्मण हो जाता है अतः प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए और ऋक्, यजु, साम, अथर्व आदि को पढ़ना चाहिए जिससे व्रत का भंग न होवे। ब्राह्मण ग्रन्थ स्वाध्याय को अन्य व्रतों की भांति एक व्रत बतला रहा हैं। शतपथ 11।5।6।2 में इस स्वाध्याय को ब्राह्मण कहा गया है और आगे चलकर बताया गया है कि इस यज्ञ की वाणी जुहू है। मन उपभृत है, चक्षु ध्रुवा और मेधा स्त्रुवा है और सत्य इसका अवभृथ है। ऋग्वेद में स्वयं इसका सुन्दर वर्णन है। वर्षाकाल में मेंढ़क बोलते हैं। एक की बोली को दूसरा दुहराता है। यह उपमा ऋग्वेद में वेदपाठी ब्राह्मण को दी गई है। क्योंकि इस चातुर्मास्य के समय में वेद को पढ़ते हैं। वस्तुतः वेद का मण्डूक शब्द और यह उपमा निदर्शन का महत्व लिए है। इससे सुन्दर सम्मिश्रण वेदवाणी, मण्डूक की वाणी और मानसून-मेघस्य वाणी का और कब हो सकता है? इस वर्षा की ऋतु में वेदज्ञ के मुख से निकली वेदवाणी, मानसून की गड़गड़ाहट से निकली मध्यमा वाणी और मेंढ़कों की अनिरुक्त अव्यक्त वाणी- परा, पश्यन्ती, मध्यमा, और बैखरी के अनिरुक्त रूप की प्रतीक हैं और इस वर्षा की ऋतु में इन सबका समन्वय हो जाता है। अतः स्वाध्याय की प्रवृत्ति को प्रत्येक आर्य को बढ़ाना चाहिए- यही यहां पर मेरा निवेदन है।

यज्ञोपवीत और श्रावणी

श्रावणी के साथ यज्ञोपवीत के धारण और पुराने छोड़ने की भी प्रथा जुड़ी हुई है। इसका भी प्रधान कारण है। गृह्यसूत्रों में विभिन्न कर्मों के समय विभिन्न प्रकार से यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है। निवीति, उपवीति, प्राचीनावीति आदि संज्ञायें इसी आधार पर हैं। यह भी एक गृह्यसूत्रों के आधार पर परिपाटी है कि प्रत्येक प्रधान उत्तम यज्ञयाग आदि कर्मों के समय नया यज्ञोपवीत धारण किया जावे। उसी आधार की पोषिका यह श्रावणी पर यज्ञोपवीत बदलने क प्रथा भी है। यज्ञोपवीत का आर्यों के संस्कार और

कर्मकांड में बड़ा ही महत्व है। यज्ञोपवीत के तीन धागे गले में पड़ते ही वह पितृऋण, देवऋण और ऋषि ऋण आदि कर्त्तव्यों से अपने को बन्धा हुआ समझने लगता है। यहां उपनयन, यज्ञोपवीत, व्रतबन्ध आदि पद इस सम्बन्ध में विशेष महत्त्व के हैं। आचार्य कुल में विद्यार्थी लाया जाता है इसी क्रमपूर्वक अत: यह उपनयन है। यज्ञ और उत्तम कर्मों के लिए विद्यार्थी इससे प्रतिज्ञात और अधिकृत होता है अत: यज्ञोपवीत है। इस से अनुशासन और व्रतों के पालन की प्रतिज्ञा में बद्ध होता है अत: यह व्रतबन्ध है। वेदों में भी इस यज्ञोपवीत धारण का वर्णन है। उसी को लेकर अन्यत्र शास्त्रों में इसका पल्लव किया गया है। ऋग्वेद 10।57।2 मन्त्र में कहा गया है कि-

"जो तन्तु यज्ञोपवीत-तन्तु यज्ञों का प्रसाधक है और विद्वानों में आतत है उसको हम धारण करें। यद्यपि इस मन्त्र में बहुत से तथ्य छिपे हैं परन्तु विस्तार भय से यहां पर उनका वर्णन नहीं किया जा रहा है।"

✦✦✦

तृष्णा

आपने बड़े से बड़े निडर और बलवान के विषय में सुना होगा, पढ़ा होगा या हो सकता है कि देखा और अनुभव किया हो पर आपने कभी इस पर शायद ही विचार किया हो कि तृष्णा जैसा निडर और बलवान कोई नहीं । इस जैसा दीर्घायु भी कोई नहीं । तृष्णा अच्छे-अच्छों को प्रभावित कर लेती है और पराजित कर देती है। हम इसके मोह में फंस जाएं, और फंसते ही हैं, तो इससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। हमारे चेहरे पर झुर्रिया पड़ती जाती हैं, बाल सफेद होते जाते हैं, हमारा अंग-अंग ढीला पड़ता जाता है यानी हम बूढ़े होकर खस्ता हाल होते जाते हैं पर हमारी तृष्णा और तरूण होती जाती है । यह कितनी हैरानी की बात है कि जवानी को बुढ़ापे का डर होता है, निरोग शरीर को रोगों का डर रहता है, इस जीवन को मृत्यु का डर रहता है पर तृष्णा को किसी का डर नहीं होता, इसे पराजित करना या नष्ट करना आसान नहीं होता । उमंग और शक्ति से भरा यौवन चला जाता है, मोती जैसे सुन्दर दांत गिर जाते हैं, काले घने घुंघराले सुन्दर केश सफेद होकर घासफूस की तरह हो जाते हैं, रस भरी मादक आंखें रूखी और बेनूर हो जाती हैं, ठीक से दिखता नहीं और न सुनाई देता है, बिना सहारे के चला जाता नहीं । ऐसी स्थिति में भी तृष्णा कम नहीं होती । हम खत्म हो जाते हैं तृष्णा खत्म नहीं होती । हम तृष्णा को पूरी तरह भोग नहीं पाते उलटे तृष्णा ही हमारा भोग लेती है ।

एक आदर्श विद्यार्थी – एक अच्छा अभिगमकर्त्ता

एक आदर्श विद्यार्थी ज्ञान की तलाश में गहरे से गहरा जाता है। वह किताबी कीड़ा नहीं होता है। वह उसे अच्छी तरह से जानता है कि स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। वह सभी गतिविधियों में रुचि लेता है जो उसके स्वास्थ्य का चहुँमुखी विकास करती है।

वह उसी आनन्द और उत्साह के साथ खेल-मैदान में जाता है जैसा कि वह पुस्तकालय में अध्ययन करता है। एक आदर्श विद्यार्थी कभी भी असामाजिक नहीं होता है। वह अपने सहपाठियों से प्रेम करता है और सदैव टीम-भावना से कार्य करने में विश्वास रखता है। एक आदर्श विद्यार्थी कुँए का मेंढक नहीं होता बल्कि वह विस्तृत दृष्टि व महान् विचारों वाला एक व्यक्ति होता हैं वह सदैव नियमित व समय का पाबन्द होता है। वह विरोधी और नकारात्मक गतिविधियों में शामिल नहीं होता है। वह सदैव स्वयं को अध्ययन व कार्यों के लिए प्रयासरत रखता है। वह सादा जीवन में विश्वास करता है। वह दयालु और उदार होता है।

इस संसार को आज धन-सम्पदा व समृद्धि की नहीं बल्कि उच्च चरित्रवान् विद्यार्थियों की आवश्यकता है। राष्ट्र की उन्नति ऐसे विद्यार्थियों पर ही निर्भर करती है। यही भारतीय संस्कृति की कल्पना का मुख्य आधार है। भारतीय संस्कृति शाश्वत सत्य का संग्रह है। यह भारत भूमि सभी तरह से पवित्र है। इसकी मिट्टी में सत्य, हवा में धर्म, कण-कण में दया और गंगा जैसी पवित्र नदियों में प्रेम प्रवाहित होता है।

एक आदर्श विद्यार्थी सदैव विनम्र होता है। मात्र एक विनम्र व्यक्ति ही कार्य में गुरु की दक्षताओं को सीख सकता है, आज्ञा मान सकता है और शिक्षाओं का पालन कर सकता है। उसका मस्तिष्क शान्त और कोमल होता है। वह नवीन विचारों का ग्राही होता है और नियम और कारणों के प्रति उत्तरदायी होता है।

आदर्श विद्यार्थी की दूसरी विशेषता उसकी जिम्मेदारी की भावना है। बिना जिम्मेदारी के जीवन में कोई भी लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता केवल एक जिम्मेदार व्यक्ति ही एक अच्छा नागरिक बन सकता है। जो अपने अधिकार और कर्त्तव्यों के प्रति सचेत रहता है।

एक आदर्श विद्यार्थी अपने सभी कार्यों को कर्त्तव्यनिष्ठा और जिम्मेदारी की भावना से ग्रहण करता है। उत्तरदायी और कर्त्तव्यनिष्ठ होने के अतिरिक्त वह अपने अध्ययन और कठिन मेहनत में संलग्न रहता है। वह असफलता और बाधाओं से हतोत्साहित नहीं होता है और दृढ़ निश्चय व समर्पण के साथ जीवन में सफलता प्राप्त करता है। दृढ़ता के साथ एक आदर्श विद्यार्थी कठिन मेहनती होता है। कठिन मेहनत और सामंजस्यता साथ-साथ चलती है। एक आदर्श विद्यार्थी की गहनदृष्टि व उत्सुक दिमाग होता है। ये दोनों गुण ज्ञान प्राप्ति में जीवन्त हैं, बुद्धिमानी व समझ पैदा करने में सहायक हैं, वास्तव में ये ज्ञान के बीज हैं। वास्तव में एक आदर्श विद्यार्थी मानवता के गुणों से भरपूर होता है और दंभ, घमण्ड और अहंकार छूते भी नहीं हैं। उसका हृदय सदा मानवीय दया और निःस्वार्थ भावना से भरा होता है।

विद्यार्थी राष्ट्र के भावी नागरिक होते हैं। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को पुनः प्राप्त किया जा सकता है यदि वे प्रकाश के संवाहक बन जायें तो आज देश में सर्वत्र झूठ, अन्याय, बुरा आचरण और बुराइयों का अन्त हो जाए। शाश्वतता को मिटाने वाली इन चीजों का विद्यार्थी को दृढ़तापूर्वक समाधान

करना चाहिए। आधारभूत मानव मूल्यों के द्वारा भारत के विद्यार्थियों को समाज में ज्ञान का प्रकाश फैलाना चाहिए।

एक आदर्श विद्यार्थी कौन?

सुखार्थी त्यजेत् विद्या, विद्यार्थी त्यजेत् सुखम्। सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थी सुखम्।।

(आनन्द प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को विद्या से हाथ धोना पड़ता है और विद्या प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को आनन्द छोड़ना पड़ता है अतः सुख चाहने वाले विद्या व विद्या चाहने वाले को सुख की कामना नहीं करनी चाहिए) ज्ञान और पढ़ाई में बहुत बड़ा अन्तर है। ज्ञान एक अनवरत प्रक्रिया है। व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में सीखता रहता है। विद्यालय या महाविद्यालय में पढ़ाई करना ज्ञान की प्राप्ति का एक छोटा सा काल है। जो अपने विद्यार्थी जीवन में अध्ययन के प्रति गंभीर व समर्पित होते हैं, वे पढ़ने सीखने और अध्ययन का अभ्यास करने की आदत का विकास कर लेते हैं। वे सम्पूर्ण में से अच्छाई को प्राप्त कर के उस प्राप्त अच्छाई का अधिकतम उपयोग करते है। इतिहास में कई उदाहरण हैं जो बतलाते हैं जिन्होंने स्वयं को सांसारिक लोभ-लालच व आनन्द से मुक्त रखा, उन्होंने नाम व प्रसिद्धि प्राप्त की और अमर मृत्यु को प्राप्त किया अर्थात् मरकर भी अमर हो गए।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज, जिनका विश्व की महान् आत्माओं के बीच में प्रसिद्ध स्थान है, उनका छात्र जीवन मथुरा में गुरु विरजानन्द जी महाराज के मार्गदर्शन में बहुत कठिन रहा। जिस कक्ष में स्वामी दयानन्द जी रहते थे, वह इतना छोटा था कि कोई भी उसमें ठीक ढंग से अपनी टाँगों को नहीं फैला सकता था। वह प्रकाश की कमी के कारण अपने अध्ययन के लिए दीपक भी नहीं जला पाते थे।

विद्यार्थी आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि कैसे स्वामी दयानन्द जी ने अपना अध्ययन कार्य किया। उन्होंने इन कठिनाइयों का बहादुरी से सामना किया और विश्व के प्रसिद्ध विद्वान् बन गए। उनका संस्कृत व्याकरण पर आश्चर्यजनक नियंत्रण था। उन्होंनें प्राचीन ग्रंथों में विशेषतया वेदों का अध्ययन किया। वेदों को सच्चे व ईश्वरीय ज्ञान का स्रोत माना जाता है। भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का विद्यार्थी जीवन भी बहुत कठिन रहा है। उन्हें नदी पार करके स्कूल जाना पड़ता था। नित्य नदी को तैर कर पार करने की घटना ने उन्हें वास्तविक जीवन में मजबूत और साहसी बना दिया। संसार में कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व रहे हैं जिन्होंने दयनीय आर्थिक अवस्था से अपने जीवन को उठाया व एक आदर्श विद्यार्थी जीवन के मापदण्डों का प्रयोग करते हुए विश्व के धनी लोगों में स्थान निर्मित किया।

ब्रह्मचर्य आश्रम (छात्र जीवन) को भविष्य निर्माण का नींव का पत्थर माना जाता है। हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा छात्र जीवन कितना भव्य रहा है। यह अच्छी तरह से कहा जाता है कि-

"An hour to suffer life time to enjoy"

"अच्छे व्यक्तियों द्वारा निर्देशित छात्र-जीवन भविष्य की समृद्धि के लिए उत्तरदायी होता है।"

उचित समय प्रबंधन जीवन, समय का उपयोग, धन और शक्ति व्यक्ति को सफल जीवन की ओर प्रेरित करते हैं।

-बलेश्वर मुनि

आर्यसमाज का इतिहास

धर्म का मूल स्त्रोत

लेखक- इन्द्रवाचस्पति

आर्य समाज की आवश्यकता और उसके स्वरूप को भली प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम संसार की धार्मिक परम्परा का सिंहावलोकन करें क्योंकि उसे भली प्रकार समझ कर ही हम यह जान लेंगे कि मनुष्य जाति के धार्मिक विकास में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का कौन-सा स्थान है। हम सृष्टि के आदि से आरम्भ करते हैं।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिमा जायतैकम्।।ऋग्वेद।।

यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार-आवृत, रात्रिरूप में जानने के आयोग्य आकाश रूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एक देशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण-रूप से कार्य-रूप कर दिया- दयानन्द

"And the earth was without form and void and darkness was upon the face of the deep." - बाइबिल

आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।- मनुस्मृति

यह सबकी मानी हुई बात है कि सृष्टि के आरम्भ में अंधेरा था। केवल आँखों के लिए ही अंधेरा नहीं था, सभी तरह से अंधेरा था। आँख नहीं थी, न सूर्य था, और न ही वे चीजे थी जो देखी जाती हैं। न बुद्धि थी, न बुद्धि को रास्ता दिखाने का साधन था, और न बुद्धि से जानने योग्य पदार्थ थे। न तीर, न कमान, न लक्ष्य। तब चले क्या ? और लगे किस पर ? बस संसार की यही दशा थी।

धीरे-धीरे सृष्टि की रचना हुई। सभी आस्तिक मानते हैं कि सृष्टि की रचना में जो इच्छा शक्ति काम करती थी, उसका नाम तत्वदर्शियों ने 'ईक्षण' रखा है क्योंकि मनुष्य की तरह वह इच्छा सीमित नहीं है। नास्तिक लोग, जिनकी संख्या कम, परन्तु आवाज बड़ी है, कहते हैं कि सृष्टि स्वयं ही बन गई। उसके बनाने के लिए किसी इच्छा शक्ति रखने वाले की आवश्यकता नहीं थी। इस स्थान पर हम उनसे बातचीत नहीं करना चाहते क्योंकि बातचीत करने की पहली शर्त अभी तक पूरी नहीं हुई। पहली शर्त यह है कि वह सज्जन बिना कारीगर की इच्छा-शक्ति के बना हुआ महल या बिना जुलाहे की इच्छा शक्ति के तैयार हुआ कपड़ा दिखा दें। जब तक नास्तिक ऐसे दो भी दृष्टान्त नहीं दिखा सकते तब तक बातचीत प्रारम्भ करना व्यर्थ है।

ईश्वर की इच्छा शक्ति से सृष्टि की रचना हुई। उस इच्छा-शक्ति वाले का विस्तृत पेचीदा और अद्‌भुत संसार उसमें साक्षी है। देखिये उसका चमत्कार कि यदि उसने मनुष्य की आँखे पैदा की तो साथ ही उनका सहायक सूर्य भी बनाया। आँखे देख सकती हैं, परन्तु सूर्य के बिना नहीं। सूर्य या सूर्य का कोई

प्रतिनिधि, आँख और देखने योग्य वस्तु, ये तीनों मिल कर जब अपनी अपनी सेवा बजा लाते हैं, तब देखा जाता है। तीनों में से कोई भी सार्थक नहीं हो सकता। जब तक शेष दो उपस्थित न हों। यही जगत् के बनाने वाले की प्रतिभा का अद्‌भुत चमत्कार है कि आँख दी तो रोशनी के साधन साथ उपस्थित किये। बच्चे को स्वयं चलने-फिरने में अशक्त बनाया तो माता के स्तनों में दूध दे दिया और वह मातृ-स्नेह दिया जो बच्चे की सब निर्बलताओं को पूरा कर देता है।

जिस अद्‌भुत इच्छा और प्रतिभा के भंडार ने आँखें बनाईं, उसी ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की जिसका दूसरा नाम अन्दर की आँख है। यह नाम यों ही कल्पना नहीं कर लिया गया, इसका बहुत प्रबल कारण है। हम व्यवहार में दोनों को बहुत समान देखते हैं। आँख, मनुष्य का बाह्य वस्तुओं के परखने का मुख्य साधन है, शेष इन्द्रियाँ उतना महत्व नहीं रखतीं। आँख रोशनी की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती, बिल्कुल निकम्मी रहती है। इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि का विस्तार करने के लिए पुस्तक, पुस्तकालय, अध्यापक, विद्यालय, कॉलेज, यूनिवर्सिटी और अन्वेषणालयों की आवश्यकता होता है। बुद्धि सहायता के बिना निकम्मी ही रहती है। किसी समय और किसी जाति को देखिये, आप कहीं भी यह न पायेंगे कि मनुष्य ने बिना सिखाये शस्त्र-विद्या या शास्त्र-विद्या सीख ली हो। ऐसे दृष्टान्त पाये हैं जहाँ सिखाये बिना बालक समझना और बोलना तक नहीं सीखे। मनुष्य की बुद्धि उन्नति कर सकती है परन्तु बिना आधार के नहीं। बीज-रूप से शिक्षण मिल जाने पर बुद्धि द्वारा उसका महावृक्ष बनाया जा सकता है, परन्तु बीज अवश्य चाहिए। यदि यह न होता तो वर्तमान संतति शिक्षा का इतना बल न देती। मनुष्य की बुद्धि बहुत कुछ कर सकती है। यह पहाड़ों को चीर सकती है, वायु और आग को वश में कर सकती है, परन्तु असम्भव को सम्भव नहीं बना सकती, ज्ञान का बीज उत्पन्न नहीं कर सकती और बिना सहायता के देख नहीं सकती। नित्य का व्यवहार इसमें साक्षी है।

यही कारण है कि जिस जगत्पिता ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों को सोचने की शक्ति दी, उसी ने सोचने का सहायक बीज-रूपी ज्ञान भी दे दिया। आज बालकों के गुरु अध्यापक लोग बनते हैं, उस समय बाल-सृष्टि का गुरु वह आदि गुरु बना, जिसके बारे में महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में कहा है कि "वह पूर्वों का भी गुरु है, उस पर समय का बन्धन नहीं है।" वेदों में उसे 'कवि' कहा है, और साथ ही कवियों का बनाने वाला 'कविक्रतु' कहा है। वह स्वयं परोक्ष के देखने वालों का गुरु है। आदि गुरु होने से ही बाइबिल में उसे 'शब्द' या **word** कहा है।

हम इस परिमाण पर तो पहुँच गए हैं कि सृष्टि के आरम्भ में पहले मनुष्य या मनुष्यों की बुद्धि के लिए ऐसे सहायक की आवश्यकता थी, जो बीज-रूप से ज्ञान दे सके। हम यह भी देख चुके कि उस समय यदि प्रारम्भिक मनुष्यों के सिवा किसी की ज्ञानशक्ति और इच्छा-शक्ति थी, तो परमात्मा की थी। इसलिए परमात्मा को ही मनुष्य जाति का आदि गुरु मानना चाहिए, परन्तु इतने पर भी यह न सोच लेना चाहिए कि हमारा अभिप्राय सिद्ध हो गया। मनुष्य की विशाल बुद्धि यदि ईश्वर की सिद्धि में 'कुसुमाञ्जलि' लिख

सकती है तो वह जगत् के खंडन में 'खण्डनखण्डखाद्य' भी लिख सकती है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध लेखक जेम्स स्टुअर्ट मिल इलहाम की असत्यता प्रकट करते हुए कई प्रश्न उठाते हैं। उनमें से सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मनुष्यों को मुख द्वारा उपदेश दिया? कहना पड़ेगा कि नहीं, क्योंकि परमात्मा के भौतिक मुख नहीं है। तब दूसरा प्रश्न यह होता है कि उपदेश कैसे दिया? या इस प्रश्न को इस प्रकार रख सकते हैं कि मनुष्य को ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हुई? क्या जिस प्रकार व्यवहार में गुरु शिष्यों को उपदेश देता है? ऐसे तो परमात्मा उपदेश नहीं दे सकता। तब यही मानना पड़ेगा कि परमात्मा ने मोजजा किया, चमत्कार किया, आँख झपकते-झपकते मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो गया। इस पर तीसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है, "क्या संसार में मोजजे होना सम्भव है?"

जिस समय यूरोप में यह प्रश्न उठाया गया था, उनमें कुछ बल था, क्योंकि उस समय अध्यात्म विद्या ने परीक्षण द्वारा अपनी सत्यता सिद्ध नहीं की थी, परन्तु अब दशा बहुत बदली हुई है। अब यूरोप में अध्यात्म-शास्त्र से बहुत-से परीक्षण हुए हैं, और परिणाम में मेस्मरिज्म और हिप्नोटिज्म आदि वैज्ञानिक सच्चाइयों का आविर्भाव हुआ है। यह सिद्ध हो चुका है कि एक मनुष्य प्रबल इच्छा-शक्ति के प्रभाव से दूसरे मनुश्य को यथेष्ट ज्ञान दे सकता है और यथेष्ट कार्य करवा सकता है। मिल महोदय के समय में यह मोजजा था, आज यह वैज्ञानिक सच्चाई है। जब एक साधारण मनुष्य अपनी इच्छा-शक्ति के बल से यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करवा सकता है, तो क्या अनन्त शक्तिशाली परमात्मा अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल से ज्ञान नहीं दे सकता? इनमें आज कुछ भी मोजजापन दिखाई नहीं देता।

यहाँ एक और विचार उपस्थित कर देना अनुचित न होगा। संसार में हम कार्यकारण की अटूट श्रृंखला देखते हैं। जो आदमी पत्थर पर सिर मारता है, उसका माथा फूट जाता है। जो आग में हाथ में देता है, वह हाथ जला बैठता है। क्या जड़ और क्या चेतन सभी में कार्य-कारण-भाव दिखाई देता है। मनुष्य की भली-बुरी चेष्टाओं के प्रसंग में इस कार्य-कारण श्रृंखला का नाम 'पाप-पुण्य' व्यवस्था है। जो निरन्तर झूठ बोलता है उसका विश्वास उठ जाता है; जो इन्द्रियभोग में फँसा रहता है, और संयम से नहीं रहता वह शारीरिक व दिमागी शक्तियों को खो बैठता है; जो आवश्यकता से अधिक खा लेता है, उसके पेट में दर्द हो जाता है, इत्यादि सब दृष्टान्त सिद्ध करते हैं कि संसार में कुछ व्यापी नियम है जो अटल हैं। यदि कोई दो एक अपवाद मिलते हैं तो वह नियम की पुष्टि करते हैं। कुछ नियम हैं जिनके अनुसार मनुष्यों को सुख-दुःख प्राप्त होते हैं, अटकल से नहीं। जो संसार का अधिष्ठाता है, वह नियम बनाता और नियमों के अनुकूल संसार को चलाता है। वह बुरों को बुरा और भलों को भला फल देता है। यह उसका नियम है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई अच्छा राजा अपने राज्य के नियमों को गुप्त भी रख सकता है? यदि कोई राजा प्रजा को यह न बतावे कि चोरी करने वाले को कैद का दण्ड मिलेगा, पर चोर को कैद में भेज दे तो क्या चोर उसे अन्यायी राजा न कहेगा? प्रत्येक राज-नियम जिसके अनुसार प्रजा को सुख-दुःख मिलते हैं, प्रकाशित होना चाहिए। यदि कोई आदमी थोड़ा-सा भी यत्न करे तो उसकी पहुँच में होना चाहिए। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों की सृष्टि हुई तब भी उन्हें अच्छे-बुरे कर्मों के अच्छे-बुरे फल मिलते थे। क्या उस समय संसाररूपी

राज्य के राज–नियम प्रकाशित नहीं हुए थे ? यदि हुए थे, तो प्रश्न यह उठता है कि वह किस रूप में प्रकाशित हुए थे ? दूसरा पक्ष माना जाय तो परमात्मा को अन्यायी और अत्याचारी राजा मानना पड़ेगा, क्योंकि जो राजा यह नहीं बताता कि कौन–कौन–से कर्म बुरे हैं जिनका दण्ड मिलता है, और दण्ड देने को तैयार हो जाता है, उसे सिवाय अन्यायी और अत्याचारी के कुछ नहीं कह सकते।

इस सारे तर्क का परिणाम यह निकलता है कि सृष्टि के आरम्भ में एक नियम–संग्रह का होना आवश्यक है। मनुष्य की बुद्धि बिना सहायक के स्वयं ही सब कुछ उद्‌भावित नहीं कर सकती। वह ज्ञान को जो सृष्टि के आदि में मनुष्यों को ईश्वर की ओर से प्राप्त हुआ, धर्म का मूल स्त्रोत है। वह मूल स्त्रोत कौन–सा है ?

हमारा उत्तर है कि ऋगादि वेदों की संहितायें ही धर्म के मूल स्त्रोत हैं। वह क्यों न ?

1.धर्म का मूल–स्त्रोत वही हो सकता है जो सृष्टि के आरम्भ में हुआ हो। अन्य कोई भी धर्म–पुस्तक सृष्टि के आरम्भ में होने का दावा नहीं करती। पारसियों की धर्म–पुस्तक 'जन्दावस्ता' को बने लगभग 3,800 साल हुए है। डॉ. हौग उसके समय को पीछे ले जाते हैं तो 4,100 सालों से अधिक पीछे नहीं ले जा सकते। पैंटाट्यूक को बने लगभग 3,400 साल हुए है। 'बाइबिल' का समय अधिक से अधिक 1956 समझा जा सकता है, यद्यपि इनमें सन्देह है कि बाइबिल का कोई भी भाग क्राइस्ट के समय बन गया था। 'कुरान' को बने 1400 साल से अधिक नहीं हुए, कम ही हुए है। यह ईश्वरीय ज्ञान होने के अन्य उम्मीदवारों की दशा है, पर वेदों की दशा दूसरी ही है इसमें तो सन्देह ही नहीं कि वेद इन सबसे पुराने हैं। मैक्समूलर ने बहुत समय पूर्व कहा था कि ''वेद हमारे लिए मनुष्य–बुद्धि के सबसे पुराने परिच्छेद को दिखाने वाला है।''

जिस समय यह शब्द लिखे गए थे, तब से आज तक किसी नाम लेने वाले योग्य विद्वान् ने इस उक्ति का खण्डन नहीं किया है। यह सर्व–सम्मत बात है कि संसार के पुस्तकालय में वेद सबसे प्राचीन पुस्तक हैं। सृष्टि के आदि में होने के और सब दावेदार वेदों के सामने ढीले पड़ जाते हैं।

2. ज्यों–ज्यों खोज गहराई में जा रही हैं, त्यों–त्यों वेद का समय पीछे–ही–पीछे चला जाता है। हम नीचे एक तालिका देते हैं जिससे पता लग जायेगा कि वेदों का समय किस प्रकार पीछे–ही–पीछे चलता जा रहा है।

वेदों का अनुमानिक समय

नाम	कम-से-कम	अधिक-से अधिक
मैक्समूलर	800 वर्ष ई. पूर्व	1,500 वर्ष ई. पूर्व
मैक्डानल्ड	1,000'' '' ''	2,000 '' '' ''
हौग	1,400'' '' ''	2,000'' '' ''
ह्विटनी	1,500'' '' ''	2,000'' '' ''
विलसन	'' '' '' ''	'' '' '' ''

ग्रिफिथ	" " " "	" " " "
जैकोबी	" " " "	4,000" " "
तिलक	" " " "	8,000" " "

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्वानों की खोज वेदों को पीछे-ही-पीछे ले जा रही है; जितना पीछे समय पहुँचता है, उतने ही प्रमाण प्रबल होते जाते हैं कि वेद उससे भी पुराने हैं।

3.और कोई भी धर्म-पुस्तक सृष्टि के आदि में होने का दावा नहीं करती। केवल वेद ही इसका दावा करते हैं। वे अपनी उत्पत्ति सृष्टि के आदि में ईश्वर से बताते हैं:-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

(ऋक्. 10,90,9; यजु. 31,7)

उसी सर्वपूज्य परमात्मा से ऋक्, साम, अथर्व और यजु उत्पन्न हुए हैं।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्,
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्,
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।

(अथर्व. 10,23,4,20)

जिस जगदाधार परमात्मा से ऋक्, यजु, साम और अथर्व उत्पन्न हुए हैं उसके यथार्थ स्वरूप को कहो।

ऊपर तीन वेदों के दो मन्त्र दिये गए हैं। पहला मन्त्र दो वेदों में समान रूप से आया है। वह सृष्टि प्रकरण में है। सृष्टि के आरम्भ की शेष रचना के साथ वेदों के आविर्भाव का भी कथन है। ऐसी स्पष्टता और सीधे तौर पर किसी भी दूसरी धर्म-पुस्तक में (1) सृष्टि के आदि में होने और (2) परमात्मा से उत्पन्न होने का दावा नहीं किया। धर्म का मूल स्रोत वह हो सकता है जो सृष्टि के आदि में हुआ हो या कम-से-कम और सबसे पुराना हो। इस स्थान का एक ही दावेदार है, और वह "वेद" है।

इस स्थान पर वेद, इन्जील, कुरान, आदि की तुलना या सापेक्षक आलोचना करना अभीष्ट नहीं है। हमें केवल उस इतिहास-श्रृंखला की पहली कड़ी देखनी है, जिसकी अन्तिम कड़ी आर्य समाज है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उस श्रृंखला की पहली कड़ी "वेद" है। संसार के इतिहास में कोई भी ऐसी धर्म पुस्तक नहीं जो प्राचीनता में वेद का सामना कर सके। ऊपर जो प्रमाण दिये गए हैं, उनसे यही प्रतीत होता है कि वेदों का आविर्भाव उसी समय प्रारम्भ हुआ, जब आर्य जाति का प्रारम्भ हुआ, परन्तु यदि कोई इस स्थापना को अस्वीकार करे, तो भी उसे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वेद संसार के धर्म-रूपी भवन की पहली ईंट है। आगे हम दिखलायेंगे कि वही उस भवन की आधारभूत ईंट भी है।

आजादी (राष्ट्रीय पर्व) बनाम महर्षि दयानन्द

ले. नरसिंह सोलंकी मो. 9413288979

"स्वदेशी शासन चाहे कितना भी बुरा क्यों न हो विदेशी शासन से अच्छा ही रहता है।" परतंत्र भारत में सबसे पहले यह विचार निर्भीकता एवं स्वप्रेरणा से प्रकट करने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती ही थे जिन्होंने हमें आजादी की प्रेरणा दी। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप सन् 1857 से स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरुआत हो गई थी। बाद में देशी रियासतों के शासकों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया। कई सेनानी स्वतंत्रता के संग्राम में कूद पड़े यथा सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, बिस्मिल खां, रामप्रसाद, उधमसिंह, राजगुरु, सुखदेव, रोशनलाल आदि ने अपने प्राण त्याग दिये।

राजनैतिक स्वरूप के अहिंसक आंदोलन में महात्मा गांधी के नेतृत्व में पं. जवाहरलाल नेहरु, सरदार वल्लभ भाई पटेल, राजाराममोहनराय, लालबहादुर शास्त्री, दादाभाई नौरोजी, विनायक दामोदरदास, मौलाना आजाद सरोजिनी नायडू, डॉ. राधा कृष्णन्, डा. जाकिर हुसैन, प्रफुलचन्द्र, रासबिहारी बसु, डा.बी.आर. अंबेडकर, विनोदाभावे, जयप्रकाश नारायण, एन. संजीव रेड्डी, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई, राजा राममोहनराय, चितरंजनदास, विपिनचन्द्रपाल, बहादुरशाह जफर, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य बाल गंगाधर, वीर सावरकर, सुभाषचन्द्र बोस, सी.राज गोपालाचार्य, पं. मदन मोहन मालवीय, गोविन्द वल्ल पंत, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, फखरुद्दीन अली अहमद, एनीबेसेन्ट, मोरारजी देसाई, बी.डी. जत्ती आदि ने भाग लिया व जेल यातनाएं सही।

महर्षि दयानन्द ने एकेश्ववाद के साथ ही समाज सुधार का बहुत बड़ा आन्दोलन गुरु विरजानन्द की प्रेरणा से हाथ में लिया। समाज में कुरीतियों व अंधविश्वास घर कर गये थे। सर्वत्र समाज में अंधकार छाया हुआ था, उसे मिटाने के लिए विधवा स्त्री विवाह चालू करवाया, बालविवाह बंध करने की प्रेरणा दी। गौ संरक्षण एवं छुआछूत मिटाने हेतु चारों वर्ण व्यवस्था की मर्यादा बतालाई। जादू, टोने, टोटके मिटाने की प्रेरणा दी व एक ही परमपिता परमेश्वर की न्याय व्यवस्था एवं उपासना की प्राप्ति के लिए अमरग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना की। बाद में इन्ही सुधारों के विशय में भी महात्मा गांधी ने पहल करके अपने जीवन में उतारा व लोगों को भी प्रेरणा दी। भारतीय संविधान जो 26 जनवरी 1950 को लागु हुआ उसमें भी इन्हीं सुधारों को प्राथमिकता मिली जिन्हें गांधीजी ने अपनाया व सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने उद्घोषित किया था।

मंत्रः- **कर्हि स्वित्तदिन्द्र यूज्जरित्रे विश्वप्स ब्रह्म कणवः शविष्ठ।**

कदा धियोन नियुतौ युवारो कदा गोमथा हवनानि गच्छाः ।।

अर्थ:- हे इन्द्र (राष्ट्राध्यक्ष) आपके सुशासन में धन वृद्धि, पूर्ण बुद्धिमता एवं उत्तम क्रिया कलापों को लागू कीजिये, जिससे प्रजा का भला हो।

अब हम 15 अगस्त सन् 1947 से हर साल भारतीय स्वतंत्रता दिवस एवं 26 जनवरी सन् 1950 से भारतीय संविधान लागू होने का गणतंत्र दिवस मनाते आ रहे हैं। 15 अगस्त को लाल किले पर प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रय ध्वज तिरंगा फहराया जाता है, और राष्ट्र को संबोधन देते हैं, जिसमें भावी नीतियों की झलक दिखलाई पड़ती है। 26 जनवरी को दिल्ली [redacted] पथ पर राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाता है। जिसमें देश विदेश के मेहमान, पदाधिकारी [redacted] मान्य लोग व आम जनता भी शरीक होती है। कार्यक्रम में मिलिट्री परेड, घातक हथियार प्रदर्शन, प्रदेशों की सांस्कृतिक झांकियों, वीर बालकों की सवारी, लडाकू विमानों आदि का उत्कृष्ट प्रदर्शन एवं मेडल वितरण किये जाते हैं।

स्थानीय स्तर पर भी ये दोनों कार्यक्रम प्रदेश व जिला स्तर पर सरकारी कार्यालयों व सरकारी एवं निजी विद्यालयों में बड़े उत्साह के साथ सरकारी आदेशानुसार मनाये जाते हैं। इनाम, प्रशंसा-पत्र व मिठाइयां भी खूब बांटी जाती हैं। लेकिन अफसोस की बात यह है कि जनता जनार्दन ने ये पर्व अपने स्तर पर स्वीकार नहीं किये हैं। कितना अच्छा होता यदि भारत का हर नागरिक अपने घर-संस्थान में तिरंगा झंडा फहराता, राष्ट्रीय गान गाता व मिठाई बांटता। कुछ लोग तो यह भी मानते हे कि तिरंगा झंडा तो कांग्रेस का है, इससे हमारा क्या लेना देना। लेकिन यह तो स्पष्ट है कि तिरंगा झंडा ऊपर से केशरिया बहादुरी का, नीचे हरा हरियाली खेती का एवं बीच में सफेद शान्ति का प्रतीक है, जिसके बीच में अशोक चक्र की 24 पंखुड़ियाँ होती हैं व कुल साइज 1 X1.5 का अनुपात रहता है। कांग्रेस के झंडे तिरंगे के बीच में हाथ के पंजे का निशान है। अलग अलग राजनैतिक दलों के उनके अलग अलग प्रकार के झंडे चौबीसो घंटे लहराते रहते हैं। जहां तक राष्ट्रीय ध्वज का प्रश्न है वहां पार्टी अपना झंडा नहीं लगाकर केवल राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा ही फहरायेगी वह भी सुबह से शाम सूर्यास्त तक ही, चाहे न्यायालय हो अथवा प्रशासनिक भवन।

अब इसी माह में यह पर्व 15 अगस्त का सामने हैं, हमें प्रयत्न करके हर आर्यसमाज, आर्य वीर दल शाखा एवं उच्च स्तरीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं में राष्ट्रीय पर्व मनाने की शुरुआत करनी चाहिए। देय आयद दुरुस्त आयद। हमने सारे संसार को आर्य बनाने का बीड़ा उठा रखा हैं, तो हमें सबसे पहले हमारी उच्च कोटि की राष्ट्रीयता प्रस्तुत करनी चाहिए। अत: सभी आर्यजनों से नम्र निवेदन है कि उक्तपर्व को पूर्ण श्रद्धा के साथ मनावे और इसका अच्छी तरह प्रसार प्रचार भी उपलब्ध साधनों, मीडिया, पत्र-पत्रिकाएं आदि के द्वारा करावें एवं अपने विचार प्रस्तुत करावें।

ओ३म्
कृण्वन्तोविश्मार्यम्

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

के तत्वावधान में

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी

132वाँ महर्षि स्मृति [redacted] सम्मेलन

एवं

ऋग्वेद द्वितीय मण्डल यज्ञ

का आयोजन

दिनांक २७-२८-२९ एवं ३० सितम्बर २०१५
रविवार, सोमवार, मंगलवार व बुधवार

साथ ही

नव निर्मित यज्ञशाला का उद्‌घाटन

तथा

नव पल्लवित आरोग्यकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती उद्यान

और

आरोग्य सदन प्राथमिक चिकित्सा परामर्श केन्द्र

एवं

वैदिक साहित्य विक्रय केन्द्र का

लोकार्पण

-: वेद मर्मज्ञ आचार्य गण :-

आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश-गाँधीधाम
आचार्य डॉ. वागीश जी शर्मा -मुम्बई
आचार्य आर्य नरेश जी -हिमाचल
पण्डित रामनारायण जी शास्त्री- सिरोही

श्री नरदेव जी आर्य-भरतपुर, भजनोपदेशक
ब्रह्मचारी श्री सत्य पाल शर्मा-मन्दसौर, भजनीक
बहन श्रीमती सरोज शर्मा-नई दिल्ली, योगाचार्या

-आर्य किशनलाल गहलोत , मंत्री न्यास, जोधपुर

स्वाध्याय करो

तर्ज- अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे .....

बच्चे बूढ़े नर नार सभी स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो।
आदर्श परिवार सभी स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो।
स्वाध्याय में ऐसी मस्ती है।
अनमोल बड़ी पर सस्ती है।
पाओगे प्रभु का प्यार सभी स्वाध्याय करो.......
चाहे देश विदेश का अन्तर हो।
वेदों का पाठ निरन्तर हो।
पढ़ने के हैं हकदार सभी स्वाध्याय करो.........
सद्ग्रन्थों की जो रंगत है।
ऋषियों मुनियों की संगत है।
हो जाओगे भव पार सभी स्वाध्याय करो.........
बचपन यौवन या बुढ़ापा हो।
कोई रोग बदन में व्यापा हो।
ऋषि वचन करो स्वीकार सभी स्वाध्याय करो...
श्रुति सम्मत है व्यवसाय यही।
दु:ख से बचाने का उपाय यही।
सपने होंगे साकार सभी स्वाध्याय करो............
सत्शास्त्र मिलें जो पढ़ने को।
संकेत हो पथ पर बढ़ने को।
रहो 'पथिक' सदा तैयार सभी स्वाध्याय करो....

-पं. सत्यपाल ''पथिक''

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17 Date Of Posting 9,10-8-2015

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला से

आचार्य- जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण करवाकर, सब विद्याओं को पढ़ा देवे, उसको 'आचार्य' कहते हैं।

अतिथि- जिसकी आने और आने में कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर भ्रमण करके प्रश्नोत्तरों के उपदेश करके सब जीवों का उपकार करता है, उसको 'अतिथि' कहते है।

पञ्चायतनपूजा- माता, पिता, आचार्य, अतिथि और परमेश्वर को जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है, उसको 'पञ्चायतनपूजा' कहते है।

पुरुषार्थ- अर्थात् सर्वथा आलस्य को छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिए मन, शरीर, वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करना है, उसको 'पुरुषार्थ' कहते हैं।

पुरुषार्थ के भेद- जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करना, प्राप्त का अच्छी प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ाना ओर बढ़े हुए पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सबके हित करने में खर्च करना है, इन चार प्रकार के कर्मों को 'पुरुषार्थ' कहते हैं।

परोपकार- अर्थात् अपने सब सामर्थ्य को दूसरे प्राणियों के सुख होने के लिये जो तन, मन, धन से प्रयत्न करना है, वह 'परोपकार' कहलाता है।

सत्याचरण- सत्य रूप से किए गए आचरण को सत्याचरण कहते है।

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655

Book-Post

।।कृण्वन्तो-विश्वमार्यम्।।

वेद-परिचय

ऋग्वेद परिचय

इस ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है, अर्थात् ईश्वर ने जिसमें सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है, इसलिये सब विद्वानों को चाहिये कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़ के उन मन्त्रों से ईश्वर से ले के पृथिवी-पर्यन्त पदार्थों को यथावत् जान के संसार में उपकार के लिए प्रयत्न करें। ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिससे सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जाय वह 'ऋक्' और वेद अर्थात् जो यह सत्य सत्य ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से 'ऋग्वेद' शब्द बनता है।

'अग्निमीळे' यहाँ से ले के 'यथा वःससुहासति' इस अन्त के मन्त्र पर्यन्त ऋग्वेद में **आठ अष्टक और एक अष्टक में आठ आठ** अध्याय हैं। सब **अध्याय मिलके चौसठ** होते है। एक एक अध्याय की वर्ग संख्या मूल ग्रन्थ में देख लें, और आठों अष्टक के सब वर्ग 2024 दो हजार चौबीस होते हैं।

तथा इसमें दश मण्डल हैं। एक एक मण्डल में जितने सूक्त और मन्त्र हैं वो निम्न लिखित रूप में हैं।

मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मंत्र	अष्टक	मंत्र
१	२४	१९१	१९७६	१	१-८
२	०४	४३	४२९	२	९-१६
३	०५	६२	६१७	३	१७-२४
४	०५	५८	५८९	४	२५-३२
५	०६	८७	७२७	५	३३-४०
६	०६	७५	७६५	६	४१-४८
७	०६	१०४	८४१	७	४८-५६
८	१०	१०३	१७२६	८	५७-६४
९	०७	११४	१०९७		
१०	१२	१९१	१७५४		
१०	८५	१०२८	१०५२१		

उपरोक्त दशों मण्डलों में ८५ अनुवाक १०२८ सूक्त और <u>१०५२१</u> मन्त्र हैं सब सज्जनों को उचित है कि इस बात को ध्यान में करलें कि जिससे किसी प्रकार का गड़बड़ न हो।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र की महत्ता पर प्रसिद्ध लेखक देवेन्द्रबाबू द्वारा लिखित भूमिका

दयानन्द—ब्रह्मचर्य का पोषक

इस पक्ष में हमारा तीसरा कारण है कि जिस प्रकार दयानन्द एक अत्यावश्यक, हितकर और महान् विषय के श्रेष्ठत्व का कीर्त्तन कर गये हैं, वैसा अन्य किसी ने नहीं किया। हम यह स्पष्टरूप से नहीं कहते कि शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य, कबीर, गौरांग आदि महापुरुष वृन्द ने ब्रह्मचर्य के श्रेष्ठत्व और महत्त्व को परोक्षभाव और साधारणभाव से प्रतिष्ठित नहीं किया, परन्तु इतना अवश्य कहते हैं कि जिस असाधारण और अपरिहार्यभाव से ब्रह्मचर्य और वेद–गौरव का दयानन्द प्रचार कर गये हैं, वैसा अन्य किसी आचार्य को करते हुए हमने नहीं देखा।

मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जयकिशनदास ने हमसे कहा था कि जिस जोर, जिस आग्रह और जिस उत्साह के साथ स्वामीजी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता का प्रतिपादन करते थे उस प्रकार से इस विषय पर बोलते हुए हमने किसी को नहीं सुना। ''वह सबसे अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे।'' दयानन्द का निश्चल विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के बिना मनुष्य का किसी प्रकार का कल्याण साधित नहीं हो सकता, चाहे वह शारारिक हो वा मानसिक, आर्थिक हो वा आध्यात्मिक। जैसे ब्रह्मचर्य के बिना राजा के लिए सुप्रणाली के अनुसार राज्य शासन करना असम्भव है और शरीर के लिए सुसन्तान उत्पन्न करना भी असम्भव है, वैसे ही ब्रह्मचर्य के बिना जाति–विशेष का उन्नयन और अभ्युत्थान भी असम्भव है। वे बार–बार कहा करते थे कि यदि इन मृतप्राय हिन्दुओं को पुनर्जीवित करना है, इस हतसर्वस्व आर्यावर्त्त के शिर को एक बार गौरव मुकुट से मण्डित करना है तो इसका उपाय ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। इसीलिए उन्होंने प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुद्धार के लिए विशेष यत्न किया था और इसीलिए उन्होंने गुरुकुल के स्थापन की व्यवस्था की थी। दयानन्द जैसे स्वयं निष्कलंक ब्रह्मचारी थे और जैसा लाभ ब्रह्मचर्य के द्वारा उन्होंने स्वयं उपलब्ध किया था, वैसे ही निष्कलंक ब्रह्मचारी वह अन्य साधारण मनुष्यों को बना, वैसा ही लाभ उन्हें उपलब्ध कराना चाहते थे। इसी हेतु से वे अपने देशवासियों से ब्रह्मचर्य धारण करने का बारम्बार साग्रह अनुरोध करते थे। वे भारतवासियों से सदा ही बलपूर्वक कहा करते थे कि तुम बच्चों–के–बच्चे और लड़कों–के–लड़के हो। यदि कोई उनसे पूछता है कि आप ऐसा क्यों कहते हैं तो वे यही उत्तर दिया करते थे कि भारतवर्ष में आजकल मात–पिता ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं करते और इसलिए भारतभूमि में बच्चों–के–बच्चे ही जन्म ग्रहण करते हैं। इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि आये दिन सहस्त्रों पुच्छविहीन भेड़–बकरियाँ उत्पन्न होकर भारत–भूमि के दुःख और क्लेश को और भी गुरुतर बना रही हैं। यह देश सर्वथा मनुष्य–विहीन और मनुष्यत्व–शून्य हो चला है। नरसिंहों के बदले सहस्त्रों भेड़–बकरियों ने देश पर अधिकार कर लिया है। आज आर्यावर्त्त भेड़–बकरियों के कोलाहल से परिपूरित और प्रतिध्वनित है। यह